योग सिद्धान्तो और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 30 मई, 1997 अंक 2

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
श्री गोविन्द सोनी
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

मई 1997

इस अंक के लेख

❀ शाश्वत सुख का द्वार 1
❀ अमृत कण 2
❀ योगियों का अनुष्ठान और क्लेश निवृत्ति (विशेष लेख) 3
-योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
❀ सिद्धयोग-सिद्धमार्ग (सम्पादकीय) 5
-आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा
❀ ध्यान रहित जप 9
-आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
❀ किमस्ति योगः (कविता) 13
-श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा
❀ सिद्धयोग महायोग है 15
-डा० विजय सिंह
❀ शब्द ही ब्रह्म है ? 18
पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
❀ विनयांजलि (कविता) 21
-श्री सूर्यकान्त पाण्डेय
❀ श्री गुरुदेव जी की कृपापात्रा—
श्रीमती सुशीलादेवी 22
-श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)
❀ योगश्चित्तवृत्ति निरोध 31
-श्री बृजमोहन वाशिष्ठ
❀ सन्तों का मिलाप 37
-श्री विष्णुप्रसाद व्यास
❀ श्री रामनवमी महोत्सव 1997 40
-श्री जगदीश गर्ग

वार्षिक शुल्क 65/- रु० । एक प्रति 6/ रु०
द्विवार्षिक शुल्क 120/- रु० । आजीवन शुल्क 651/- रु०

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षणकेन्द्र संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30 अंक 2	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविषदं योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	मई 1997

शाश्वत सुख का उपाय

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा या करोति।
तमात्मस्थे येऽनुपश्यन्ति धीरस्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।

—कठोपनिषद्

अर्थात्

सर्वान्तर्यामी प्राणी मात्र का नियन्ता जो अपने आपको अनेक रूपों में प्रकट करता है उसी नित्य चेतन शुद्ध स्वरूप को जो अपने अन्तरात्मा में देख लेते हैं उन्हीं को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

अमृत कण

सर्वस्य चाहं हृद्वि संनिविष्टो -
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्त कृद्वेदविदेव चाहम्।

मैं सब के हृदय में आत्मरूप से संन्निविष्ट हूँ। मेरी शक्ति से मानव को स्मृति ज्ञान एवं तत्त्वबोध होता है। वेद के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। मैं ही सम्पूर्णता से वेदान्त एवं वेद का जानने वाला हूँ

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव दानेषु
यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।

वेदाध्ययन से यज्ञ से, अनेक प्रकार की तपस्याओं से जो पुण्यफल कहा गया है उन सब को लाँघकर योगी अपने ध्यान योग की महिमा से परमपद को पा जाता है।

विशेष लेख

योगियों का अनुष्ठान और क्लेश निवृत्ति

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

साधना में अनुष्ठान का अपना महत्व होता है। बिना साधना के कोई भी साधक लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो सकता है। योग दर्शन में वर्णित पाँच विधि क्लेशों की निवृत्ति भी योगाङ्गों के अनुष्ठान से हो सकती है। इसे योग दर्शन में बहु विधि समझाने का उपक्रम किया गया है।

योगाङ्गों के अनुष्ठान करने का फल **विवेक ख्याति** बतलाया है। विवेक ज्ञान उसी दशा में प्राप्त हो सकता है जबकि रज और तम के नाश हो जाने के बाद स्वंतः ही सत्व शुद्धि हो जाय और ज्ञान चमक उठे।

अर्थात् योगाङ्गों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होता है, तब तक जब तक मनुष्य को पूर्ण ज्ञान प्राप्त न हो जाये। जैसा कि इस सूत्र पर व्यास भाष्य है जिसका कि अर्थ है-

योग के जो आठ अंग हैं उनको अभ्यास में लाने से पंच पर्वा विद्या जनित अशुद्धि का नाश होता है और अविद्या के नाश हो जाने पर सम्यक् ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। जैसे-जैसे मनुष्य साधनों का अनुष्ठान करता है वैसे ही वैसे अशुद्धि क्षीण होती चली जाती है, त्यों-त्यों क्षय कर्मानुरोधिनी ज्ञान दीप्ति बढ़ती चली जाती है। जितना-जितना अशुद्धि का नाश होता है उतना ही उतना विवेक ज्ञान बढ़ता ही रहता है। इस विवेक ज्ञान की वृद्धि गुणों से लेकर जब तक आत्म-दर्शन नहीं होता तब तक होती रहती है तथा विवेक ख्याति बढ़ती ही चली जाती है। पुरुष-ज्ञान ही विवेक ज्ञान की सीमा है।

हमने अपने पिछले लेखों में क्लेश-निवृत्यक यम-नियमादि का वर्णन भली प्रकार कर दिया है। यम-नियमों का पालन करना विवेक ज्ञान का साधन है। यम-नियमों के बाद क्रमानुसार भगवान पातंजलिदेव ने आसनों का संकेत किया है। आसनों के विषय में लोगों की धारणा है कि ये सब केवल शरीर शुद्धि के ही कारण भूत हैं, किन्तु बात ऐसी कहीं हैं।

शारीरिक अयोग्यता प्राप्त करना तो आसनों का फल है ही किन्तु शरीर के साथ-साथ साधक के मानस स्वास्थ्य को भी इससे बहुत लाभ पहुँचता है। आसन करने वाले साधक का शरीर स्वस्थ, सुकोमल एवम् लम्बे समय तक रहने वाला बन ही जाता है किन्तु उससे साथ-साथ ज्यों-ज्यों मनुष्य आसन, बन्ध मुद्राओं का अधिक अभ्यास करता है त्यों-त्यों उसके शरीर में वीर्य व्यापक होकर मनुष्य शान्ति एवम् आत्मतेज को बढ़ाने वाला होता है। आसनों में भी कुछ आसन इस प्रकार के हैं कि जिनका प्रभाव शारीरिक स्वास्थ्य वृद्धि के साथ-साथ आत्मोत्कर्ष की ओर भी बहुत प्रगति के साथ

बढ़ाना होता है। जैसे- **सिद्धासन, पद्मासन पश्चिमोत्तान** एवं **शीर्षसन**। जहाँ हमारे आचार्यो में आसनों का वर्णन किया है वहाँ उनके फलादेश में **पारमार्थिक** लाभ का भी बहुत बड़ा परिचय दिया है। देखिये सिद्धासन का फल, योगी आत्माराम ने "हठयोग प्रदीपिका" में लिखा है जिसका अर्थ है-

चौरासी आसनों में सिद्धासन के अभ्यास को ही प्रमुखतः करना चाहिये जो बहत्तर हजार नाड़ियों के मल का शोधन करता है। इस आसन का बराबर सेवन करते रहने से 12 वर्ष में मनुष्य सिद्धि को पा जाता है। इसी प्रकार से पद्मासन का फल देखिये-

पद्मासन पर बैठकर जो योगी मारुत धारण करता है उसकी मुक्ति में कोई शंका ही नहीं।

इसी प्रकार पश्चिमोत्तान का फल देखिये-पश्चिमोत्तान आसन प्राण वायु को पश्चिम वाही करता है अर्थात् सुषुम्ना में पहुँचाता है और जठराग्नि को बढ़ाता है। उदर के मध्य में कृशता को करता है और बल देकर शरीर को अरोग्य करता है।

ऐसे ही शीर्षासन का फल देखिये-

शीर्षासन को विरीत करणी मुद्रा कहा गया है। शीर्षासन के अभ्यास में मनुष्य को अध-शिरार्धवाद होना पड़ता है इसलिये इस आसन को विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है। जो मनुष्य और मृत्यु दर विजय पा जाता है तथा पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाता है।

अतः हमारे योग आसन केवल शारीरिक स्वास्थ्य के दाता ही नहीं प्रत्युत आत्मोत्कर्षण के भी दाता हैं। समस्त योगाङ्गों में आसनों का स्थान उत्कृष्ट होने से ये भी अनुष्ठान करने वाले मनुष्य को विवेक-ख्याति की ओर ले जाते हैं।

जहाँ पर योग के अन्यान्य अंगो का अभ्यास करने में अविद्या जनित अशुद्धि का नाश होता है, वहाँ पर प्राणायाम का विषय उत्तरोत्कृष्ट है। भगवान पतंजलि देव अपने योगदर्शन में तप के द्वारा अशुद्धि का नाश होने पर कायिक और ऐन्द्रीय शुद्धि होने का उत्तकृष्टता के साथ वर्णन करते हैं। तप की उनकी व्याख्या निम्न है-

गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास के जोड़े को सहन करना तप कहलाता है। द्वन्द सहन का अर्थ इतना ही नहीं कि मनुष्य समय-समय पर भूख-प्यास पर कन्ट्रोल करले प्रत्युत प्राण पर नियंत्रण करने को सबसे बड़ा तप कहा है। प्राण की महिमा का वर्णन करते हुये हमारे आचार्यों ने बहुत कुछ कहा है। वे लिखते हैं-प्राण ही भगवान शिव हैं और प्राण ही स्वयं ब्रहम हैं। प्राणी ही सारे संसार को धारण करता है। सारा संसार प्राणमय है। इसलिये प्राण पर नियन्त्रण करना तपों से भी महान तप है एवम् विवेकख्याति का मूल कारण है। अतः अविद्या जनित क्लेशों की निवृत्ति के लिये प्राणायाम भी एक अमूल्य साधन है। भगवान मनुदेव अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं-

जिस प्रकार सोना चाँदी आदि धातुओं के तपने से उनके मल जल जाया करते हैं, उसी प्रकार प्राणों पर नियन्त्रण करने से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं।

अतः प्राणायाम भी क्लेश निवृत्ति का एक बहुत बड़ा साधन है जिसका सांकेतिक परिचय देने का हमने प्रयत्न किया है। आगामी लेखों में हम इसका विशद् वर्णन करेंगे। ■■■

सिद्धयोग-सिद्धमार्ग

अचार्य ब्र. दासलाल शर्मा

पूज्यपाद गुरुदेव जी अपने प्रवचनों में बताया करते थे कि योग प्राप्ति के दो मार्ग हैं। एक सिद्धयोग का तथा दूसरा साधन योग का। इनमें साधन योग में साधक योग शास्त्रों में वर्णित साधनानुसार अथवा किसी अपक्व योगी से मार्ग लेकर अथवा अपनी मति अनुसार साधन में प्रवत होता है इस प्रकार से अपनी साधना एवं पुरुषार्थ के बल पर साध्य को पाना चाहता है। इस मार्ग की साधना में पूर्णता की प्राप्ति में संशय ही रहता है। प्राय: ऐसे साधक कालान्तर में सिद्धयोग के साधक बन जाया करते हैं। सिद्धयोग का मार्ग सिद्धगुरु की कृपा का मार्ग है 'सिद्ध' शब्द का अर्थ होता है जो बिगड़े को बना दे, बने को पुनः बिगाड़ दे, सृष्टि उत्पत्ति, पालन एवं संहार की शक्ति से जो युक्त हो अव्यक्त अथवा मूल-प्रकृति पर्यन्त जिनका शासन हो ऐसे व्यक्तित्व को सिद्ध कहा गया है। सिद्ध की संकल्प शक्ति अमोघ होती है उसको कोई अन्यथा नहीं कर सकता। समस्त प्रकृति सिद्ध पुरुष की इच्छा शक्ति का उसी प्रकार से अनुगमन करती है जिस प्रकार से बछड़े के पीछे गाय चलती है गीता में भगवान ने सद्गुरु सत्ता के अवतरण के तीन प्रयोजन साधुओं का परित्राण, दुराचारियों का विनाश एवं योग धर्म की संस्थापना बताया है। इनमें एक प्रयोजन को मुख्य तथा अन्य दो को गौण मानकर मानव का कल्याण सम्पादन होता है। भगवान का प्रत्येक अवतरण सद्गुरु सत्ता का ही अवतरण होता है अतः उस रूप में वह जगतगुरु एवं जगतवंद्य होता है।

संसार के सभी भक्तों, योगियों एवं संस्कारी आत्माओं के लिये उस-उस अवतरण का बहुत ही महत्व होता है। भगवान के अवतरण काल में अथवा उनके संदेह होने पर कोटि-कोटि जीवों का उनसे सम्बन्ध जुड़ जाता है। जिस देश में, जिस काल में उनका देह रूप में प्रकट होना होता है उनके संस्कारी जीवों का भी संस्कारवशात जन्म लेना होता है उस देहधारी अनादि सिद्धगुरु से जीवों का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न भावों के अन्तर्गत होता है। कोई काम भाव से, कोई द्वेष एवं क्रोध से कोई भय से कोई स्नेह से तथा कोई मित्रता का भाव रखकर अपना सम्बन्ध बनाता है। इसी भाव सम्बन्ध के अनुसार ही भगवान अथवा सद्गुरु का संकल्प बनता है और उनका वह संकल्प अमोघ होता है। यह तो रही भगवान के अवतारों की बात जिनका पुराणों में वर्णन है किन्तु उस सद्गुरु सत्ता का अवतरण तो नित्य होता है सिद्ध गुरुओं के रूप में जिनके नाम रूप का कहीं कोई वर्णन नहीं। ऐसे सिद्ध गुरुओं का जब आविर्भाव होता है। तो पहले के भगवान के अवतार के समय के संस्कारी जीवों के भी संस्कार का भुगतान के अवतार के समय के जीवों के भी संस्कार का भुगतान काल आ जाता है। '**नान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप**' के अनुसार उस सिद्धगुरु को अपने समस्त अवतार जन्मों का तथा जीवों के समस्त पिछले जन्मों का ज्ञान होता है। इस सन्दर्भ में पूज्यपाद गुरुदेव जी अपने श्रीमुख से एक दृष्टान्त सुनाया करते थे। पू. गुरुदेव योगिराज श्री

चन्द्रमोहन जी महाराज के एक मित्र थे। वह श्री प्रभु जी के चरणों में अच्छी आस्था रखते थे। एक बार गुरुदेव जी ने श्री प्रभुजी के चरणों में निवेदन किया-प्रभुजी! मेरा एक मित्र है वह आपके चरणों में आना चाहता है यदि आपकी आज्ञा हो तो आप के पास ले आऊँ। श्री प्रभुजी ने कहा-"नहीं-नहीं उसे हमारे पास नहीं लाना"। कुछ दिन बाद गुरुदेव जी अपने किसी अन्य मित्र को लेकर प्रभु जी के पास आये। उस मित्र को प्रणाम करते देखकर श्री प्रभुजी कहने लगे अच्छा इसे ले आये। किन्तु जब उसके मुख को ध्यान से देखा तो कहने लगे, नहीं-नहीं यह तो वह लड़का नहीं है जिसे लाने की बात तुम कर रहे थे"। श्री प्रभु जी ने फिर गुरुदेव से कहा, अभी उसे हमारे पास मत लाना। श्री गुरुदेव जी ने विनय भाव से पूछा-प्रभुजी आप उस लड़के को अपने पास बुलाना क्यों नहीं चाहते हैं? इस पर श्री प्रभु जी ने कहा-हमारा उसका संस्कार राजा दशरथ के समय से चला आ रहा है। जिसका भुगतान काल अभी नहीं है। इस प्रसंग से यह बात सिद्ध होती है कि किस प्रकार से क्लिष्ट संस्कार जन्म-जन्म से चले आते हैं और भुगतान काल की प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं। श्री रामावतार में शूर्पनखा ने कामना से भगवान राम से सम्बन्ध बनानी चाही किन्तु उस समय का वह भाव कृष्णावतार में कुब्जा प्रसंग में फलवती हुआ। इसी प्रकार से जनकपुर की सीता जी की सखियों ने भगवान राम की पतिरूप में कामना की तो वे कृष्ण अवतार में गोपियों के रूप में आईं। और अपने भाव को साकार रूप दे पाईं।

सिद्धगुरु के साथ भी जीवों का इसी प्रकार से संस्कार बनता है। साधक या जीव के आत्मोत्थान में सदेह गुरु का जितना महत्व है उतना देहरहित गुरु का नहीं। मनुष्य स्वभाव से ही नाम रूपात्मक जगत में रहने का अभ्यस्त होता है। शरीरधारी गुरु से ही वह प्रेरणा, शक्ति, दिशा एवं अपने संस्कारों को दृढ़मूल बना सकता है। गुरु मानव रूप लेकर मानवीय धरातल पर उतर कर उसके जीवन के कण-कण में प्रवेश कर उसके उत्थान की कामना करते हैं उसी अमोघ कामना से ही जीव उनकी व्यक्तित्व में समाता चला जाता है इस प्रकार से अपने को गुरुमय बना लेता है। सिद्धगुरु के मुख में ब्रह्म का निवास बताया गया है। उनकी कृपा से ही ब्रह्म की प्राप्ति संभव है ऐसा भगवान शिव का वचन है। सिद्धयोग का साधक सर्वथा **'गुरु कृपा हि केवलम्**, के आधार पर साधना में प्रवृत रहता है। **अद्वैतं भावयेत गुरोर्देवस्य यात्मनः'** अर्थात् गुरुदेव इष्टदेव तथा आत्मतत्व ये तीनों एक ही सत्ता के नामान्तर हैं इस बात का निरन्तर बोध सिद्धयोग के साधक को बना रहता है। गुरुदेव का शाश्वत रूप तो आत्मा ही है। सद्‌गुरु भगवान **'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः'** श्रीकृष्ण इस वचन के द्वारा अपने आत्मतत्व रूप से सब भूतों के अन्दर विद्यमान रहने की बात कहते हैं। सद्‌गुरु की उस व्यापक सत्ता आत्मतत्व को प्राप्त करने की जो विधि है, वही गुरुदेव अपने शिष्य को बताते हैं। इसे ही योग कहते हैं उस विधि के उपदेश के साथ-साथ शिष्य के मन और बुद्धि में अनुप्रविष्ट होकर उससे योग कराते हैं। चूंकि सद्‌गुरु का मूल प्रकृति पर्यन्त अधिकार होता है इस कारण से वे प्रत्येक जीव व व्यक्ति के मन-बुद्धि को प्रेरणा देकर उनसे यथाभीष्ठ

कार्य कराने में समर्थ होते हैं।

सिद्धमार्ग में सिद्धगुरु के योगेश्वर्य-एवं योग विभूतियों का प्राकट्य बहुलता से होता रहता है। हमारे परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरित्र निरन्तर ही लोकोत्तर कार्यों से भरे रहते हैं। इन सब में सिद्ध गुरु की सर्वव्यापकता, सर्वरूपमय, एवं सर्वभूतात्म स्थिति ही कारण है। सर्वरूपमय होने के कारण अपने कार्य को करने में जैसा रूप बनाना चाहे बना लिया करते हैं। इसलिये उनके लिये **सर्वभूतमयः स्थितः** कहा जाता है। ऐसे में कभी-कभी सिद्धयोग का अपक्व योगी इस प्रकार के अलौकिक कार्यों को घटित हुआ देखकर इसे अपनी शक्ति समझने का भ्रम पाल लेता है। किन्तु इस प्रकार से गुरुदेव की शक्ति को अपनी स्वायत्त शक्ति कहकर आत्मश्लाघा करना या करवाना साधक के पतन का कारण अवश्य बनता है। आत्मदर्शन के पथ पर साधक का सबसे बड़ा शत्रु अहंकार है। गुरुदेव ही कृपा करके इसे विगलित करते हैं। सिद्धगुरु के साधक शिष्य से भी कोई नया योग जिज्ञासु अपना सम्बन्ध बना लेता है तो उस को भी सिद्ध गुरु की कृपा तरंगे छूने लगती है। फलतः उसे भी दिव्य दर्शन एवं आनन्दानुभूति होने लगती हैं। कभी-कभी यह बात यहाँ तक भी हो जाती है कि उस नये जिज्ञासु के संकटकाल में आर्तपुकार किये जाने पर सिद्धगुरु अपने अपक्व शिष्य के रूप में प्रकट होकर भी उस भक्त की रक्षा कर दिया करते हैं। इसका एक मोटा कारण यह होता है कि वह जिज्ञासु भक्त उस सिद्धयोगी के शिष्य में सिद्धगुरु का बिम्ब देखता हुआ उसमें श्रद्धा रखता है। एक प्रकार से नया जिज्ञासु सिद्धगुरु की ही उपासना करता हुआ उनकी कृपा का भाजन बन जाता है इस विषय में भगवान के गीता के '<u>यो यो यां यां तनुं</u> **भक्त्या श्रद्धयार्चितुमिच्छति**' के वचन को भी सामने रखना चाहिये। इसका भावार्थ यह है कि जो जो भक्त जिस-जिस रूप अथवा शरीर में श्रद्धा रखकर उपासना करता है भगवान उसकी श्रद्धा को उसी रूप अथवा शरीर में और दृढ़ कर देते हैं। यह सिद्धमार्ग की ही बात है। चमत्कारों में मुख्य भूमिका है श्रद्धा का। श्रद्धा के बलाबल को देखकर भगवान भक्त के लिये सब कुछ करते रहते हैं। अंग्रजी में इस विषय में कहावत है Faith Can Work Miracle अर्थात् श्रद्धा ही चमत्कारों की जननी है। दूसरी बात यह भी है कि अनुभव, दर्शन एवं आनन्द का सम्बन्ध मन की एकाग्रता से ही है। मन की एकाग्रता में शिथिलता आ जाने पर अथवा साध ना में प्रमाद हो जाने पर ये सब अस्तंगमित हो जाये करते हैं। वृत्तियों के उत्थान पतन के साथ-साथ इनका भी उत्थान पतन चलता रहता है।

सिद्धयोग की साधना में यदि साधक पूर्णरूपेण सद्गुरु समर्पित हो तो उसके ध्यान का फल, पुण्य एवं आत्मिक शक्ति को गुरुदेव अपने पास एवं आत्मिक शक्ति को गुरुदेव अपने पास रख लिया करते हैं। ताकि अनिष्ट से शिष्य बचा रह सके। गुरुदेव ही शिष्य के आत्मिक जीवन के पूर्ण नियामक होते हैं। इस प्रसंग में पूज्यपाद गुरुदेव जी ने पिछले माह के अंक में समपर्णा का फल बताते हुये नैपाल के जंगलों में साथ रहने वाले बूढे ब्राह्मण का उदाहरण दिया है। अघोरी ने उस ब्राह्मण को वाक्‌सिद्धि दे दी। उस सिद्धि से अपने पतन का भय मानता हुआ वह

ब्राह्मण शरीर नाश के लिये तत्पर हो गया। किन्तु श्री प्रभु जी ने समय पर उसकी रक्षा कर ली। प्रभु जी कहने लगे, "तू चिंतित क्यों हो रहा है? अघोरी ने तुझे वाक्‌सिद्धि दे दी। वह हमने ले ली। इससे तेरा क्या लेना देना है? यह सिद्धि तुम्हारे पास नहीं है। अब तुम किसी को वर-शाप देकर देख लो वह फलीभूत होगा ही नहीं। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि गुरुदेव शिष्य के अन्तःनि को किस प्रकार से अपने पास रख लिया करते हैं। गुरुदेव अपने बालकों के संस्कार चक्र को किस प्रकार से काटते रहते हैं इस बात का संकेत हमें बाल कृष्णदास वैरागी के जीवन की एक घटना से मिलता है। बालकृष्ण दास वैरागी को प्रयाग में मेहू मल्लाह ने शाप दे दिया। शाप देते ही वह तुरन्त कोढ़ी हो गया। श्री प्रभु जी के पास आकर उसने अपनी व्यथा सुनाई। श्री प्रभु जी ने कहा- लो यह गंगा की बालू शरीर में लगा लो ठीक हो जायेगा। उस समय तो वह पूर्ण ठीक हो गया किन्तु कालान्तर में श्रीप्रभुजी ने उसे ध्यान में बताया। बालकृष्णदास मेहू का शाप अभी बाकी है इसलिये यदि तू चाहे तो इसी शरीर में भुगतान कर ले अन्यथा अगला जन्म पूरा कोढ़ी का रहेगा। उस पर उन्होंने प्रार्थना कि प्रभु जी इस संस्कार को इसी शरीर से काटना चाहता हूँ। प्रभु जी के संकल्प से कोढ़ के लक्षण प्रकट हो गये। प्रभु जी ने एक वर्ष में ही इस संस्कार को सूक्ष्म रूप में भुगत दिया। श्री बाल कृष्ण दास ने स्वस्थ होकर शरीर छोड़ा। इस प्रकार की घटनाओं से गुरुदेव की कृपाओं का पता चलता है। अपने बच्चे को योगक्षेम का पूरा वहन वे करते रहते हैं जो वस्तु उनके लिये हितकर हो उसे देते रहते हैं और उस दी हुई वस्तु की रक्षा भी वे स्वयं करते हैं। अतः सिद्धयोग के साधक को एकमात्र गुरुदेव ही अराध्य मानकर शरणापन्न होकर आत्मत्वेन उनकी उपासना में लगे रहना चाहिये।

परम चेतन का अंश है मनुष्य!

मनुष्य उस परम चेतन परमेश्वर का अंश है। विभिन्न प्राणी परमात्मा से उत्पन्न होकर उसी में लय होते हैं। यह उत्पत्ति एवं लय की लीला इसलिये रची गयी है कि इस विश्व में जो प्रेम का अमृत भरा हुआ है उसका जीव रसास्वादन करे और उस आनन्द से परितृप्त होकर अपने को धन्य माने

ध्यान सहित जप

आचार्य चन्द्रहास शर्मा (दिल्ली)

शब्द और उसके अर्थ में वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता है। शब्द वाचक है और अर्थ वाच्य। उसी प्रकार नाम और रूप में साकार और निराकार सम्बन्ध है। एक के अवलम्बन से दूसरा प्रकट होता है। एक प्रकट है, दूसरा उसी में अन्तर्निहित है। जप के द्वारा शब्द में रहने वाला अर्थ प्रकट होता है। जैसे रत्न का मूल्य ग्राहक की इच्छा से प्रकट होता है। जप में 'ज' और 'प' दो शब्द हैं। 'ज' का अर्थ है जन्म और 'प' पाताल, मूलाधार, परावाणी तथा पाप राशि का प्रतीक है। जिसके द्वारा जन्म-मरण का विनाश हो और संचित पाप-राशि क्षीण हो उस प्रक्रिया को जप कहा गया है। जप को गीता में यज्ञ कहा है। अग्नि में आहुत द्रव्य अग्निरूप होकर व्यापक बन जाता है। उसी प्रकार साधक के प्राणों से मिलकर शब्द अखण्ड चैतन्यरूप अर्थ बनकर साधन के अन्तरायों और विघ्नों को दूर हटा देता है। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** सूत्र में ध्यान सहित जप की ओर संकेत किया है। ध्यान ही अर्थ की भावना है और वाचिक, उपांशु या मानसिक शब्दोच्चारण उसका ध्वन्यात्मक स्वरूप स्फुरित करना जप है। जप से सोया हुआ मन्त्र जाग्रत हो जाता है। जब तक मन्त्र का ऋषि, छन्द, देवता और गुरुसत्ता उदबुद्ध नहीं होते तब तक मंत्र का जप यांत्रिक कार्यमात्र होता है। ध्यान सहित जप से मंत्रार्थ प्रकट होता है। जब तक मंत्र ध्यान से संपुटित नहीं होता तब तक अभीष्ट फल का दाता नहीं होता। त्रिबन्ध लगाकर योनिमुद्रा शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा या भैरवीमुद्रा में किया गया जप ध्यान और धारणा युक्त होकर समाधि की ओर अभिमुख कर देता है।

मंत्राक्षरों को अनुलोम विलोम कर जपने से मंत्र संपुटित हो जाता है। संपुटित मंत्र शीघ्र मन की शक्ति के साथ एकाकार होकर मनोमय फिर बुद्धिमय बनकर भावनामय हो अर्थ का साक्षात्कार कराता है। बाम नासिका से वायु संचार हो उस समय मंत्र जपने से मंत्र सुप्तावस्था में रहता है, अतः मन्त्रजप निष्फल होता है। दायें स्वर से श्वांस चलने पर मन्त्र जपने में मन्त्र जाग्रत होता है। सुषुम्ना में प्राण चलने पर (दोनों स्वरों के बीच का स्वर) सभी मंत्र जाग्रत होते हैं। मंत्र को जाग्रत कर जपने से अवश्य अभीष्ट लाभ होता है। मंत्रजप में उचित आसन, मुद्रा और श्वास की गति का तथा धारण युक्त ध्यान का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जिस प्रयोजन से मंत्रजप किया जाय उसी के अनुसार अपने इष्ट देवता या मंत्र के देवता के हाव-भाव एवं स्वरूप का चिन्तन भी करे। जैसे शन्ति कर्म, पुष्टिकर्म, वशीकरण या आकर्षण कर्म में नानालंकार युक्त, प्रसन्नमुख, स्मितानन, सुकुमार कमलासन देवता का ध्यान करे। आकर्षण कार्य के लिये मछली को काँटे से खींचने की तरह देवता का आकर्षण करें उच्चाटन में बन्धनुक्त, प्रताडित रूप का ध्यान करें। मारण प्रयोगों में रक्त पीते हुए काली के रूप का ध्यान करते हुए बीज नाम तथा

पल्लव युक्त मंत्र के जप का विधान बताया गया है। वशीकरण, स्तम्भन, मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण ये षट्कर्म दूसरे के लिये किये जायें तो कर्म संस्कार तथा उसका फल तैयार करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप साधक रागद्वेष के चक्कर में पड़कर दुर्गति प्राप्त करता है। यदि यही कर्म अपनी काम, क्रोध, लोभ मोह आदि वृत्तियों क्लिष्ट अक्लिष्ट वृत्तियों के उच्छेदन के लिये किये जायँ तो साधक आत्मकल्याण के मार्ग का पथिक बन जाता है।

जप करते समय माला का प्रयोग भी ठीक रहता है। रुद्राक्ष माला सभी कार्यों के लिए ठीक है। कमलगट्टों की माला भी सभी प्रकार के कार्यों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। स्फटिक की माला के जप से सरस्वती मंत्र का जप शीघ्र सिद्ध होता है। मोती, मूँगा या जिया पोते की मालायें भी विशेष मंत्रों के लिए उपयोगी हैं। योग साध क को रुद्राक्ष की माला श्रेष्ठ है। जप करने वाला साधक जिस भावना से जप करता है उसी के अनुसार उसे उसे अभीष्ट लाभ होता है। अपने मन को वश में करने के लिए पुर्वाभिमुख होकर जप करने का विधान है। क्रोधादि को समूलनष्ट करने के लिए दक्षिण दिशा की ओर मुख कर जप करे। लक्ष्मी प्राप्ति के लिए, योगसिद्धि के लिए और सिद्धियों के लिए पश्चिमाभि मुख जप उचित माना गया है। आयुष्यरक्षा शन्तिप्राप्ति तथा पुष्टिकर्म में उत्तराभिमुख होकर जप का विधान किया गया है। सकाम कर्मो में आसनशुद्धि प्राणशुद्धि, तत्वशुद्धि, अगंन्यास, करन्यास, ह्रदयन्यास तथा दिग्बन्ध कर प्राणायाम के अनन्तर जप फलदायी होता है अजपाजप में दिक्काल आदि का कोई नियम नहीं है। अजपाजप में अनुलोम विलोम जप शीघ्र ध्यान का लाभ देता है। प्राण और अपान के बीच में शून्य स्थान पर जितना-जितना मंत्र व्याप्त होता जायगा उतना ही मंत्र साधक के मन में रचपच जायगा और उसके जप मात्र से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण सम्भव होगा। लौकिक कार्यों के लिए (अभिचार, मारणादि) वाचिक जप का विधान है। शन्तिलाभ एवं पुष्टिकर्म के लिए उपांशु जप तथा मोक्ष साधना के लिए मानसिक जप श्रेष्ठ है। वाचिक से उपांशु सौगुना और उपांशु से मानसिक हजारगुना फलदायी है।

किसी भी वैदिक, पौराणिक या तान्त्रिक मंत्र को बिना सेतु के जपने से मंत्र का शीघ्र लाभ नहीं हो पाता। प्रणव को मंत्र को आदि और अन्त में लगाने से मंत्र सेतु युक्त बनता है। ॐ को प्रणव कहा जाता है। इसी प्रकार ऐं, ह्रीं, क्लीं, सौः आदि भी विभिन्न कार्यों के प्रयोग के लिए तंत्रों में प्रणव माना जाता है।

जप करने में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों की आवश्यकता है। जिह्वा, वाक, मन और अन्तर्चक्षु तथा प्राण सभी के ठीक-ठीक उपयोग से मंत्र जप होता है। वाक् चार प्रकार की होती है- परा,पश्यन्ती, मध्यमा तथा बैखरी। प्रारम्भ में जप बैखरी से होता है। धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते सद्गुरु कृपा से जप क्रमशः मध्यमा, पश्यन्ती तथा परावाणी से होने लगता है। यहीं परावाणी से जप होने पर अर्थ का साक्षात्कार नित्य स्थित में होता है। अजपाजप का वास्तविक कार्य पूर्ण होता है। इस रहस्य को छान्दोग्य उपनिषद में ऋषि ने प्रकट किया है। 'यद्वै प्राणिति स प्राणो। यदपानिति सोऽपानः। अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो। यो व्यानः स वाक्। तस्माद अप्राणनन् अनपानन् वाचमभिव्याहरति।' अर्थात् जो

अन्दर जाता है वह श्वास प्राण है (वाह्य) जो बाहर निकलता है वह अपान है। जो प्राण अपान के बीच में सन्धि है उसका नाम व्यान है। जो व्यान है वही वाक् अर्थात् वाणी है। यह वाणी प्राण अपान की क्रिया को बिना किये ही मध्य से विकसित होती है। प्रत्यभिज्ञा हृदय में चिदानन्द लाभ के लिए मध्य के विकास का उपदेश मिलता है। **(मध्य विकासात् चिदानन्द लाभः)** इस सन्धि स्थल में मंत्र को स्थापित का जप करने से योगसिद्धि शीघ्र होती है। छान्दोग्य उपनिषद् में अध्याय 1 खण्ड 3 मंत्र 3,4,5 में आगे स्पष्ट किया गया है कि जो भी उत्साह, शक्ति तथा उत्कृष्ट कार्य है जैसे अग्नि मंथन, धनुष का कर्ण तक खींचना आदि उन्हें प्राण अपान के बिना केवल व्यान वायु से ही पुरुष करता है। इसलिए व्यान से ही साम और उद्गीथ की उपासना करनी चाहिये। देखिये ऋषि का कथन **'अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्मन्थन माजेः सरणं वृढस्य धनुष आयनम प्राणान्न पायन्ँस्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद् गीथमुपासीत्**। प्राण और अपान की सन्धि में वीर्य और बल के कार्य किये जाते है। भगवान का गीता में वचन है कि वे प्रत्येक युग में प्रकट होते हैं। वह युग प्राण अपान का प्रत्येक सन्धिकाल है। योगवाशिष्ठ में प्राणपान के मध्य में चितत्व की स्थिति मानी है। **'समायोग सन्धिः तत्समयं तत्र विभातं ब्रह्मेति यावत्।'**

प्राणियों के मूलाधार में कारण विन्दु के रूप में निष्पन्द अवस्था में शब्द ब्रह्म का निवास है। दूसरा क्रियाशील बिन्दु भ्रूमध्य में स्थित है। यह शब्द ब्रह्म निष्पन्द रूप में परावाक् नाम से जाना जाता है। जब प्राणवायु विमर्श के रूप में मन से संयुक्त होकर मूलाधार से नाभि पर्यन्त ध्वनित होती है तब उस नाम पश्यन्ती हो जाता है। यहाँ विन्दु में प्रकाश और विमर्श का अविर्भाव हो जाता है। जब बुद्धि का संयोगपाकर यही प्रकाश रूप विमर्श नादात्मक होकर नाभि से हृदय पर्यन्त गमन करता है तब उसका कार्य बिन्दु की मध्यमा अवस्था कहलाती है। जब यह ध्वन्यात्मक होकर कण्ठ आदि स्थानों से अकारादि की रूप में वहिर्मुख हो जाता है तो उसका नाम वैखरी वाणी हो जाता है। साधारण मनुष्य केवल वैखरी वाणी का ही प्रयोग जानता है। किन्तु योग साधक श्री सद्गुरु के शक्तिपात से वाणी के नीचे के स्तरों की यात्रा गुरु की अनुग्रहिका शक्ति को मंत्ररूप से प्राप्तकर उसका जप करते-करते एक दिन प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।

जिस पर श्री सद्गुरुदेव शक्तिपात करते हैं उस साधक का चित्त अन्य चिन्तन क्रिया से रहित आत्मतत्व के विमर्श में लीन हो जाता है। आत्म भावना में समाविष्ट साधक जब जप करता है। तो **'ज्ञानाधिष्ठानं मातृकाः'** इस शिव सूत्र के नियमानुसार मंत्र के शब्दों में ज्ञान का उदय होता है।

स्वच्छन्द शास्त्र में इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि-

'आत्मनो भैरवं रूपं भावयेद्यस्तु पुरुषः।
तस्य मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति नित्ययुक्त स्य सुन्दरि।।'

अर्थात जो साधक अपनी आत्मा की भैरव या शिवरूप में भावना करता है उसके मंत्रजप की सिद्धि होती है। क्रिया और भाव दो भिन्न स्थितियाँ हैं। क्रिया से कर्म होता है। कर्म प्रयासजन्य तथा विचारजन्य क्रिया है। भाव स्वतः स्फूर्त सहज निर्विचार स्थिति है। भाव की शक्ति भावना कहलाती है। भावना प्राणवायु की अन्तर्मुखी गति है जिसके द्वारा शाम्भव पद में

आनन्द प्रियरूप से तथा प्रकाशरूप से समावेश होता है। इस स्वयं संवेद्य पद का परामर्श ही भावना है। पातंजल योगदर्शन में जप के सम्बन्ध में सिद्धान्त है- **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** इस सूत्र में मंत्र का पुनः पुनः स्मरण एवं अभ्यास करते हुए उसकी अर्थ की भावना करने का निर्देश है। मंत्र का अर्थ मंत्र का प्रतिपादित देवता होता है। ज्ञानमय तथा शक्तिमय प्रकाश स्वरूप देवता कहलाता है। भावना की स्थिति और उत्पत्ति के विषय में स्पन्दकारिका में संकेत मिलता है। जैसे-

'एक चिन्ता प्रसक्तस्य मतः स्यादपरोदयः।
उन्मेषः स तु विज्ञेयः स्वयं तमुपलक्षयेत्।।'

मन एक क्षण में एक प्रकार का चिन्तन करता है और दुसरे क्षण दुसरे प्रकार का चिन्तन करता है। इन दो क्षणों के बीच और प्राणों के आने और जाने के बीच मध्यवर्ती शुन्य गगन में शब्द ब्रह्म की सिद्धि होती है। इस मध्य अवस्था के उन्मेष में मंत्र को स्थापित कर स्फुरित होने से मंत्रसिद्ध होता है। विज्ञान भैरव में भी इसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया गया है-

'भावे त्यक्ते निरुद्धः चिन्नैव,
भावान्तरम् व्रजेत।
तदा तन्मध्य भावेन,
विकसत्यति भावना।।'

अर्थात् एक भाव के उदित होने और पहले क्षण के भाव के छोड़ देने पर इन दोनों के बीच में जो शुन्य स्थान है उसी में मन को रोककर स्थित हो जाने पर अतिभावना का विकास हो जाता है। यह स्वतः स्फुरित निर्विकल्पक अवस्था है। इस अवस्था में साधक आनन्द और विस्मय का अनुभव करता है जिससे अज्ञान के बन्धन शिथिल होने लगते हैं। इसके प्रभाव से साधक मंत्रजप के बाद भी अपने सामान्य व्यवहार में उस अखण्ड व्याप्त सत्ता का अनुभव करता रहता है। दो भावनाओं के मध्य में व्याप्त प्राणवायु शिवरूप धारण कर लेती है।

ऊपर के ब्रह्मरंध्र से लेकर अधोमुख मूलाधार पर्यन्त प्राणशक्ति विभिन्न चक्रों में प्रविष्ट मध्यनाड़ी अर्थात् सुषुम्ना के रूप में स्थित है। समस्त चित्तवृत्तियों का उदय और विश्राम इसी मध्यवर्ती स्थान पर होता है। जब मंत्र जप के समय सहज कुम्भक क्रिया के फलस्वरूप सद्‌गुरुकृपा से मध्यनाड़ी का विकास होता है तब हृदय में अन्तःव्यापिनी संवित् (ज्ञानशक्ति) का उदय होता है ज्ञान शक्ति के विकास से चिदानन्द का अनुभव होता है। मंत्रजप की सिद्धि का यही लक्षण है।

मंत्रजप में जब परमानन्द का आवेश होता है तब अपार असफलता की अभिव्यक्ति के रूप में नाना प्रकार की मुद्राओं का प्राकट्य होता है। जिनमें शाम्भवी मुद्रा या भैरवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, योनिमुद्रा, षण्मुखी मुद्रा, आदि प्रमुख हैं। शाम्भवी मुद्रा का हठयोगप्रदीपिका में लक्षण है-

अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेष वर्जितम्।
एषा वै शाम्भवी मुद्रा सद्यस्तत्पद दायिनी।।

शाम्भवी मुद्रा में अपलक अन्तर्दृष्टि के विकसित होने से प्राणशक्ति का न अन्तः प्रवेश होता है और न बाहर प्रसार। योगवाशिष्ठ में भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

'प्राणाक्षय पदान्तस्थमपानक्षय कोटिगम्।
अपान प्राण योर्मध्यं चिदानन्दमुपास्महे।।'

अर्थात् प्राण और अपान के मध्य के सन्धिकाल में सन्ध्या कार्य सम्पन्न होता है इसमें सहज समाधि का सुख मिलता है। अतः इसी स्थिति मंत्रजप का अभ्यास बढ़ाते हुए समाधि भावना का विकास करना चाहिए। • • •

किमस्ति योगः

द्वारकाप्रसाद शर्मा
३०६-ए ;अभिषेकम्, प्रिया निकुञ्ज, एल्डिको-उदयन-दो, उतरेटिया, रायबरेली रोड, लखनऊ

योगदर्शन शास्त्रन्तु, चतुष्पादेषु वर्तते।
समाधिपाद आद्यस्तु, साधन पादस्त द्वापरः।। 1।।
विभूतिपाद स्त्रितयः, चतुः कैवल्य पादकः।
विरोधश्चित्त वृत्तीनां, योगस्य मूलकारणम्।
ऋते निरोधादे तासां, निष्फलं योगसाधनम्।। 2।।
मन एव मनुष्याणां, वृत्तीनां मूलकारणम्।
तस्मादेव प्रजायन्ते, विविधाश्चित्त वृत्तयः।। 3।।
निरोधश्चित्त वृत्तीनां, निग्रहान्मनसो हि वै।
वृत्तयो मानसोद्भूताः, मनस्येव समाहिताः।। 4।।
मनसश्चन्चल एवं हि, सर्वैः सर्वत्र गीयते।
वशित्वं मनसस्तस्य, वायोरिव सुदुष्करम्।। 5।।
दुष्करं सुकरं कर्त्तुं, प्राप्तुन्नामीप्सितं फलम्।
सुगमः राजयोगोऽयं, निर्दिष्टं यन्महर्षिणा।। 6।।
विविधा वृत्तयो या हि, भ्रमन्ति चक्रवत् सदा।
तच्चक्रं चङ्क्रमणार्थं वै, लक्ष्यमेकं विनिश्चितम्।। 7।।
यद् गुणो यत्पदार्थो हि, व्यनक्ति तत्फलं ध्रुवम्।
तपनस्तापमाधत्ते, शैत्यं हिमकरो यथा।। 8।।
मनोऽपि स्वगुणैरेव, वर्तते स्वीय धर्मतः।
तन्नेतुं चिन्तनीये स्वे, मनसैव हि शक्यते।। 9।।
यथा कामी च लोभी च, योषिद्धिन्ते प्रतीरितौ।
तथैव यापि यद्गुन्ति, स्वं तमेवानुचिन्त्यते।। 10।।
विचाराणां, प्रवाहोऽयं, यत्र यत्रानुधावति।
तत्र तत्र समाहारः तद्रूपश्च तदात्मकः।। 11।।
अतः सर्वेषु प्रथमं, निर्ध्यायः स्वीय लक्ष्यकः।
यतः स्यादुभयोः सिद्धिः, अभ्युदय निःश्रेयसोः।। 12।।
आप्तवाक्येषु शास्त्रेषु, सद्भिश्चोदघोषितं मुहुः।
चतुरशीतिर्लक्षयोनिस्सु, योनिः श्रेष्ठा नरस्य वै।। 13।।
महता पुण्य योगेन, प्राप्यते दुर्लभं जनुः।
मनुजस्य ततो वंशो, पुनीतेऽपि तथैव च।। 14।।

ततोऽपि सद्भिरासक्तः, सद्गुणां च सन्निधिः।
पुण्योदर्केण महता, प्राप्यते नरजन्मसु।। 15।।
योगमार्गे सुविमले, श्री गुरुणां प्रसादतः।
तेषां दीक्षाप्रदानञ्च, संदीप्त्र श्रेयस्करं हि नः।। 16।।
धन्याः शिष्या गुरुणां ते, उपदिष्टानुवर्तिनः।
सत्यावभूताः शिष्यास्ते, सच्छिंष्या।भिधाश्ल ते।। 17।।
सद्गुरुन् प्रति या श्रद्धा, येषां यावन्मावका।
सिद्धिस्तावन्मिता चापि, लभ्यते शिष्यकैस्तु तैः।। 18।।
अतएव श्रद्धाधानेन, मनसा च धिया तथा।
निर्ध्यायः परमेशः सः, सद्गुरुः सर्वदा सदा।। 19।।
इतः परं पुनः पश्चात्, सूत्राण्यागृह्य कानिचित्।
व्याख्यास्ये सद्गुरुं ध्यात्वा, तेषामेव प्रसादतः।। 20।।

उपलिखित श्लोकों में, पूर्व प्रकाशित **'किमस्ति योगः'** शीर्ष रचना के माध्यम से, यह बतलाया गया है कि महर्षि पतञ्जलि विरचित योगदर्शन क्रमशः चार भागों में विभक्त है। पहला समाधिपाद, दूसरा साधनपाद, तीसरा विभूतिपाद तथा चौथा कैवल्यपाद नाम का अध्याय है। इन श्लोकों में मुख्यतः एक ही सूत्र **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** ही वक्ष्यमाण-विषय रहा है। अतः यही सूत्र वह सूत्र है जिसे हम योग का सर्वस्व कह सकते हैं। यही वह मूलभित्ति है जिस पर योगमय भव्य-भवन का निर्माण आधारित है चित्त में उत्पन्न होने वाली यदि तरङ्गसदृश चञ्चल वृत्तियों के निग्रह या निरोध में हमारा मन स्थैर्यभाव की स्थिति धारण कर ले किसी स्वेष्ट देव या सद्गुरु में, तन्मयता हो जाय उन्हीं के कमनीय योगमय कलेवर पर तब क्या प्राप्तव्य शेष रह जाता है, अर्थात मनोनिग्रह के पश्चात तो **'जितं जगन्तेन मनो हियेन'** (जगत जीत लिया उसने, मन को जीत लिया जिसने) सब कुछ करामलकवत् हो जाया करता है। मन का कार्य तो संकल्प विकल्प की व्यूह रचना है ही परन्तु यदि उसे अभीष्ट-पथ की ओर उन्मुख कर दिया जाय तो वही मन हमारे अनुकूल होकर मित्रवत् आचरण करता हुआ हमें अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति में सहायक हो जाया करता है। मनुष्य जन्म की दुर्लभता, पुनीत वंशावलि में रहते हुए समर्थ सद्गुरु का सान्निध्य किसी महान पुण्योदय के कारण हुआ करता है। ऐसे सुन्दर व शोभन संयोग में हमें सद्गुरुदेव द्वारा जिस सत्पथ पर आरुढ कर दिया गया है, उसे तदनुकूल आचरण में लाते हुए जीवन के इस सुयोग में योगमय जीवन यापन करना व कराना ही परमश्रेयस्कर है। जय जय जय श्री सद्गुरुदेव।

सिद्धयोग महायोग है

डा. विजय सिंह
रीडर गणित सेण्ट ऐण्डयूज कालेज, गोरखपुर

सिद्धों के दर्शन एवं संग बड़े पुण्य के फलस्वरूप अथवा पूर्व जन्मों में सद्कर्म जनित-संस्कार जो सिद्धों के मन में संकल्प बना देवे, इनके कारण ही मिलते हैं। आनन्दकन्द श्री सद्गुरु भगवान के चरण-शरण जिनको भी प्राप्त हुये, वे सभी बड़भागी हैं। श्री चरणों के अनन्य चिंतन से अथवा उनके अहैतुक कृपा कटाक्ष से सहज ही लोगों में आध्यात्मिक प्रक्रियायें प्रारम्भ होते हम लोगों ने देखा और स्वंय अनुभव किया है।

गोरखपुर में एक समय जो भी सदगृहस्थों के वाक्य निश्छल भाव से श्रीप्रभुजी की आरती में सम्मिलित होते ऊपर श्रीप्रभु स्वरूप से ही शक्तिपात हो जाता और उनको दिव्य अनुभूतियाँ जागृत हो उठती। भावानुसार किसी को भगवान शिव, भगवान गणपति, जगदात्मा श्रीकृष्ण के दर्शन होने शुरू हो गये। आजभी जो साधन शिथिलता नहीं बरतते हैं उनके आन्तरिक उत्थान की क्रिया निरन्तर जारी है।

उन दिनों एक इसी प्रकार के ब्राह्मण बालक कृष्ण कुमार पर श्री प्रभुजी की महत्ती कृपा का संचार हुआ। साधना से पूर्व जन्मों के घटनाओं का ज्ञान उसे होने लगा। कुछ दिनों उसकी भाव समाधि कई-कई घण्टों की लगी रहती। तद्पश्चात् उसे श्री प्रभुजी के स्वरूप भाव का आवेश आने लगा। ऐसी अवस्था में उसके कपोल लाल आभा से चमक उठते थे। दाया हाँथ बार-बार विचार पूर्वक उठता और जंघे पर अधिकार भाव से विचित्र मुद्रा में आ जाते थे।

इस प्रकार के आवेश में सतसंग में उपस्थित लोगों को आशीर्वाद देने की घटनाये भी होतीं। यह सब देखकर मेरा अनपढ़ मन उहापोह में पड़ जाता था मौका मिलने पर श्री सद्गुरु भगवान से पूछा-प्रभो। यह आवेश क्या है? इसमें सत्यता है भी या नहीं। श्री प्रभुजी ने कहा-लल्ला आवेश की घटना सत्य है परन्तु बाद में साधक अपने मान-सम्मान में पड़कर स्वांग भी करने लगजाते हैं। श्री प्रभुजी समझाते हुये बोले-लल्ला! यह शरीर (स्थूल) और इनमें ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ अन्तःकरण से चलित होती हैं। अन्तःकरण भी यंत्र रूप है जैसे माइक से कोई बोल रहा है, उनकी बाते सुनते रहते हैं। वह हट जाय और कोई दूसरा माइक पर बोलने लगे। इसी प्रकार सिद्ध लोग, देव लोग सात्विक प्रकृति वाले सरल व्यक्ति को शरीर को माध्यम बनाकर लोगों पर उपदेश व कृपा संचार भी करते हैं। तुम देखो! इसी प्रकार निम्न संस्कार वालों में तमस शक्तियाँ अपने प्रभाव से आवेश लाकर नाना प्रकार के उत्पात् मचाती हैं।

इधर एक पुस्तक **"सास्वतं कुण्डलिनी महायोग"** रचायिता डा. जितेन्द्र चन्द्र भारती को अवलोकन करने का मौका मिला। लेखक महोदय को अकमोदे जिले के बन प्रान्तर में सिद्ध कृपा से

शक्तिपात प्राप्त हुआ। साधना स्वयंमेव दिन दूनी रात्रि चौगुनी बढ़ती रही। कालान्तर में इनमें माँ सरस्वती एवं योगिराज गोरक्षनाथ का आवेश आना शुरू हुआ। सुधी जनों ने टेपरेकार्डर की सहायता से लगभग एक वर्ष में हुये आवेशित प्रवचन को रेकार्डकर इस पुस्तक की रचना की है।

यहाँ एक रुचिकर साम्य का जिक्र करना समीचीन होगा। श्री महाप्रभुजी के तिरोधान के पश्चात दक्षिण भारतीय एक युवक को भी इसी प्रकार ऋषिकेश आश्रम में आवेश हुआ था। धारा प्रवाह अंग्रेजी में वे साधक श्री महाप्रभुजी के आवेश से आवेशित होकर प्रवचन करते थे। उस प्रवचन को पुस्तकाकार दिया गया है। नाम है **"सेवन डिवाइन लेक्चर्स"**। उसे सार रूप से अनुदित कर "सिद्धयोग" में प्रकाशित करने का अगले लेखों में प्रय.स होगा।

परन्तु **"सास्वत कुण्डलिनी महायोग"** जो आवेश में वर्णित संस्कृत माध्यम से उच्चरित हुआ संकलित किया गया ग्रंथ है। इसमें सिद्धयोग के स्वरूप को भली प्रकार समझाया गया है। इसके लेख में उपरोक्त-भूमिका आवेश तत्व को समझाने हेतु दिया गया। अब देखें सिद्धयोग ही क्यों महायोग है।

अनुग्रहात् जागृतेः बोधः।

सिद्ध सदगुरु की अनुग्रह से मूलाधार में सुप्ता महाशक्ति भगवती कुण्डलिनी जागृत होकर बोध को प्राप्त होती है। यह शक्तिपात ही आत्मदर्शन, परमात्मा-दर्शन का कारण बन जाता है। जो कुछ भी होना है वह सभी साधन प्रक्रियाये-स्वंय जागृत कुण्डलिनी साधक से वकालत कराने लग जाती हैं। परन्तु एक बात विचारणीय है, वह है सद्गुरु के अनुग्रह का सतत् प्राप्त होते रहना। अतः अनुग्रह कैसे और क्यों होता है? इस पर बताया गया है-

अनुग्रहः सानुकूलभावानां ग्रहणं मतम्।
उभयत्र समानत्वे जायते तत् क्रियाकुलम्।।

अर्थात - सदगुरु के अनुकूलमय भावों का शिष्य द्वारा ग्रहण कर लेने को ही अनुग्रह कहते हैं। यह भावों की अनकूलता जब सदगुरु-शिष्य में सहज होती है तब शक्तिपात क्रिया सम्पन्न होती है।

"तत्पातस्य प्रकारत्रयम"

शक्तिपात के तीन प्रकार हैं। सद्गुरु दृष्टि से, स्पर्श से तथा सम्भावना से शिष्य में शक्तिपात किया करते हैं। शक्तिपात का प्रयोजन क्या है? इसका संक्षिप्त उत्तर है ऐहिक और पारलौकिक सिद्धि तथा स्वरूप का ब्रह्म ज्ञान होना। इसलिये श्री गुरु गीता में कहा गया है-

"मुक्ति मुक्ति प्रदातारम् तस्मै
श्री गुरुवे नमः"
तस्मान्महायोग सिद्धि।

अर्थात शक्तिपात से महायोग की सिद्धि होती है।

"तज्जागृतो भेदयोग्यता"।

अर्थात जगी हुई कुण्डलनी से चक्र भेदन की योग्यता प्राप्त होती है। चक्रों में भेदन द्वारा जीव के उपर अनादिकाल से छाये आरहे मकार्णव का नाश जागृति शक्ति करती है। अतः कुण्डलनी के जागरण से स्वतः प्राणायाम होने लगता है जिससे नाड़ी शुद्धि तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राओं द्वारा मार्ग शोधन होता है।

"सा च प्राणायामसाध्या"

वह शक्ति प्राणायामसाध्या है और प्राणायाम

से बलवती होती है। मन प्राणायाम के अधीन है। प्राणायाम से मन स्थिरता को प्राप्त होता है। तब कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा में प्रवेश करती है। वह मूलाधार में कम्पन करती हुई पहले मूलाधार का ही शोधन करती है। क्योंकि मूलाधार चक्र आधार स्वरूप है। समस्त शक्तियाँ यहाँ छिपी रहती है। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी से एक बार हमारे किसी मित्र से पूछा था - प्रभो! हम लोगों को आपने मूलाधार से ध्यान करना बताते हैं। इस पर श्री प्रभुजी ने कहा-लल्ला। श्री महाप्रभुजी-कि कृपाशक्ति से तुम सभी पूर्ण योगी-बनोगे। मूलाधार मे -तम की सोलह मात्रा हैं अतः जो-इस चक्र को जय करके योगी आगे बढ़ता है वह सम्पूर्ण विघ्न बाधाओं को जय करता हुआ। देवाधि देवों का भी पूज्य बन जाता है।

"तदा संगमेच्छा"

अर्थातः-तब उस शक्ति (कुण्डलिनी) की शिव से संगम की इच्छा होती है। मूलाधार चक्र को शोधन-भेदन करके शक्ति तीव्रता से सुषुम्णा में लय करके उपर की ओर सहस्रार स्थित महाकाल सदाशिव से संयुक्त होने के लिये आतुर होती है। साधक को इस अवस्था में सृष्टि की कलाओं का ज्ञान एवं अधिकार प्राप्त होता है। तथा योग की उच्चतर भूमिकाओं के अन्तर में ही उद्बोधन होने लगता है। श्री सद्गुरु भगवान बताया करते हैं कि ऐसी अवस्था में "योगेन योग उपाध्याय" तथा "यत्र मन्त्रणा भूमिः" की स्थित प्राप्त होती है। नाथ सम्प्रदाय में भी इसी मूलाधार स्थित शक्ति के जागरण की महिमा गायी गयी है-

प्रथम पाताल की गुफा बैठिके
धमक के फेरि आकाश धावे।
नाथ की नाथ से नाथ को नाथि के
सिद्धयोगी महासिद्धि पावे।।

कैसा अनुपम संयोग हम सभी गुरुभाई-बहनो को प्राप्त हुआ है। वे नाथों के महानाथ स्वंय ही इस महाकलिकाल में आकर हमें उद्बोधित किये एवं अतंर शक्ति को जगा गये। अब मात्र उस शक्ति के सानुकता होकर अपनी जीवन चर्या चलाना ही साधना है। क्योंकि वह जगी सदगुरु की चिदात्मिक शक्ति स्वंय ही सब कुछ कर कराने में प्रवीण है। शक्तिपात योग ही सिद्धयोग है और सिद्धयोग ही महायोग है। इसमें सम्पूर्ण साधना स्वंय होती रहती है। मात्र साधक को सदगुरु के वचनों के सानुकूल होने की आवश्यकता है।

— ❁ —

महात्माओं की दृष्टि

शक्तिशाली महापुरुषों की आत्मा चाहे अन्तरिक्ष में हो, चाहे पृथ्वी के किसी लोक में सशरीर हो, वह अपनों पर दृष्टि रखती है और माँगने पर उन्हें सहायता पहुँचाती है।

शब्द ही ब्रह्म है!

पं॰ राजेन्द्रप्रसाद पाठक

"मनुष्य सोता है तो नींद में इन्द्रियाँ संकुचित होकर मन में, मन संकुचित होकर बुद्धि में और बुद्धि संकुचित होकर अज्ञान (अर्थात-अविद्या) में लीन हो जाती है। इस तरह यद्यपि नींद में इन्द्रियाँ बहुत छिपी रहती हैं, तथापि सोये हुये आदमी (जीव) का नाम लेकर पुकारा जाय तो वह जग जाता है।"- ऐसे 'शब्द' हैं मनीषियों के:-

"शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वात् शब्दादेवापरोक्षधीः।
प्रसुप्तः पुरुषो यद्वच्छब्देनैवावबुध्यते।।"

इन बातों से परम करुणनिधान श्री प्रभुजी ने बताया कि 'शब्द' में इतनी शक्ति है कि वह अविद्या में लीन (ब्रह्म) को भी (उद्‌बुद्धकर) जगा देता है। हमारी दृष्टि तो पदार्थ (लक्ष्य) तक जाकर रुक जाती है। पर 'शब्द' केवल कान तक ही नहीं, बल्कि स्वयं (अनन्तेश्वर) तक चला जाता है।

इस स्थल पर गूढ़ बात जो समझने योग्य है, वह यह है कि-इन्द्रियाँ केवल अपने-अपने विषयों को ही पकड़ सकती हैं। चूँकि, परमात्मतत्व इन्द्रियों का विषय नहीं है, अतः इस तत्व को वह नहीं पकड़ सकतीं। परमात्मतत्व स्वयं का विषय है, उसका ज्ञान स्वयं से ही होता है। इसी बात को अर्जुन ने भगवान से स्पष्ट में कह ही दिया कि-हे प्रभो- "आप स्वयं ही अपने आप से अपने आपको जानते हैं।

"स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेष देवदेव जगत्पते।।"

(गीता 10/15)

जिसे सुनकर श्री भगवान ने बताया कि- "मन में आयी हुई सम्पूर्ण कामनाओं के छोड़ने पर मनुष्य अपने आप से ही अपने आप में सन्तुष्ट होता है- "प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते।।" (गीता, 2/55) अतः परमात्मतत्व का ज्ञानः करण (कान) - निरपेक्ष है। उस ज्ञान को आँखें नहीं पकड़ सकती हैं, पर कान 'शब्दों' के द्वारा पकड़-कर स्वयं तक पहुँचा सकता है। ('शब्द',ज्ञान) श्रवणेन्द्रिय दो प्रकार से- 'ब्रह्मरन्ध' को देती हैं। जिसे अपरोक्ष- 'शब्द'-ज्ञान तथा परोक्ष-विषय'-ज्ञान कहा जा सकता है, अतः 'शब्द' के प्रति श्रवण की बहुत महिमा है। चाहे 'शब्द' की प्राप्ति ज्ञान मार्ग या भक्तिमार्ग से (संप्राप्त) हुआ हो। यद्यपि नेत्रों से शास्त्रों का अवलोकन, अध्ययन करने से भी परोक्ष विषय का ज्ञान होता है, परन्तु वह 'शब्द' ही का लिखित रूप से, श्री प्रभु के रूप में प्रकारान्तर में 'शब्द' की शक्ति है। शास्त्र का ज्ञान जैसा गुरुमुख श्रवण से होता है वैसा अध्ययन या स्वयं ही के पठन-पाठन से ही होता है विद्याध्यन में भी पहले सुनने से ही बोध होता है अतः 'शब्द' में अचिन्त्य श्री प्रभु 'शक्ति' है जिसे श्रवणेन्द्रिय ही ग्रहण कर सकती है।, अन्य इन्द्रियाँ नहीं वैसे अन्येन्द्रियाँ विषयों से भी सन्तृप्त नहीं हो पातीं। " संसार में जितना धन धान्य है, जितनी सुन्दर स्त्रियाँ है, जितनी उत्तम वस्तुयें हैं, वे सबकी सब, एक साथ (यदि) किसी एक व्यक्ति को मिल भी जाँय तो

उनसे उसे तृप्ति नहीं हो सकती।" कारण कि जीव अविनाशी परमात्मा श्री प्रभु का अंश है तथा चेतन है और संसार में जितने भी भोग्य पदार्थ हैं वे सब नाशवान प्रकृति के अंश तथा जड़ हैं अतः चेतन की भूख जड़ पदार्थों से मिटाना असम्भव ही नहीं बल्कि दुष्कर भी है क्योंकि भूख है अच्छे-अच्छे पदार्थों का और प्राप्तिकरण में है सरबत, तो भूख कैसे मिट सकती है। जीवात्मा को तो प्यास है चिन्मय परम प्रभु परमात्मा की, पर वह प्यास मिटाना चाहता है जड़ पदार्थों के द्वारा; अतः उससे तृप्ति तो दूर बल्कि उसकी भूख और भी बढ़ जाती है। यही "जीवात्मा" की सबसे बड़ी भूख है जिसमें "श्रवणेन्द्रियाँ" ही 'शब्दाग्रही' एकाग्र (विशिष्ट महत्व) शक्ति दे सकती है।

"यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एक सयापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्जेत्।।

(मनु॰ 2/94; विष्णुपुराण 4/10/24;
महा॰ आदि 85/13)

अतः 'प्रभु'-'शब्द' एक अमूल्य निधि है जिसकी सम्प्राप्ति मात्र सन्तों से ही सुलभ है। श्री प्रभु से सम्बन्ध प्राप्ति का साधन है। इसे 'नाम' भी कहते हैं। इस अनादि 'नाम' या 'शब्द' को धुनात्मक कहा गया है। वेद उपनिषद में इसे 'नाद', 'आकाशवाणी' तथा 'अनहद शब्द' कहते हैं। इसी को 'हुकम', 'धुन', 'ऑडीबिल लाइफ स्ट्रीम' (सुनाई देने वाली जीवन धारा), 'शब्द', 'अनहदशब्द' 'सच्ची बानी', 'गुरु की बानी', 'सच', सहज, 'रामधुन', 'राम-नाम', आरती, कीर्तन, आदि अनेक नामों से याद किया जाता है। मुसलमान सन्तों ने इसे 'कलमा', 'बांग', 'निदाए-आसमानी', 'सौत', 'इस्मे-आजम', 'आवाजे-खुदा', 'सुल्तानुल-अजकार', 'कलाम' आदि कहा है। हजरत ईसा इसे 'वर्ड' या 'लोगोस' कहते हैं। इस धुनात्मक 'नाम' या शब्द का हमारे इस स्थूल-शरीर के इन्द्रियों द्वारा जानना अति कठिन है इसका सम्बन्ध शरीर से नहीं बल्कि केवल आत्मा से है। आत्मा भी इसका अनुभव तभी कर सकती है जब परम करुणानिध-ान श्री प्रभु के कमलवत् चरणों में प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति से 'शक्तिपातित' हो गया हो। 'इस जीवात्मा' को सद्गुरु की परम कृपा से यह 'नाम' या 'शब्द' अर्न्तमन में सुनाई देता है। यह अटल नियम है कि "जैसी इच्छा वैसा फल", "जहाँ आसा वहीं स्वासा या वासा", प्रकृति हमारी प्रत्येक अभिलाषा को पुरा करती है और उन इच्छाओं को पुरा करने के लिये हमें तरह-तरह की योनियों में जन्म भी लेना पड़ता है। यदि हम अपनी 'आत्मा' को 'नाम' अर्थात 'परमात्मा' के साथ जोड़ने का दृढ़ संकल्प ले लेवें तो 'नाम' का प्रेम इस संसार में जन्म मरण के बन्धन से उन्मुक्त कर देगा। संसार में जो जीव, अपनी जीवात्मा को संसार के मोह रूपी जाल में बंधा दिया है, वह तो अति दुखी और जन्म-मरण रूपी कष्ट से ग्राह्य है किन्तु जो श्री प्रभु से युक्ति प्राप्त करके 'शब्द' में लीन हैं वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों से उन्मुक्त तथा अविनाशी परमात्मा के साथ मिलकर अमरपद कैवल्य के भागी हैं। तभी तो नानकदेव जी ने बताया कि-

"नानक दुखीआ सभु संसारु।
सो सुखीआ जिस नाम अधारु।।

(आदि ग्रन्थ, 954)

महान सूफी सन्त मौलाना रुम अपनी 'मसनवी' के आरम्भ में कहते हैं कि "उसके नाम से शुरू करता हूं, जिसका कोई नाम नहीं परन्तु उसको जिस नाम से पुकारो अवश्य उत्तर देता है।"

"ब नामे ऊ नामे नदारद।
ब हर नामे कि खुआनी सर बरारद।।"

उस परम प्रभु की 'शक्ति' की महानता से इन्कार नहीं किया जा सकता और इस बात का भी कुछ फर्क नहीं पड़ता कि उसे किस नाम से पुकारा जाय। वह हर सम्बोधन पर उत्तर देता है। महा चैतन्य प्रभु ने बताया कि "जो सदा जाग्रत है, अपना नाम पुकारे जाने पर उत्तर नहीं देगा? परन्तु हमें उससे बात करने का तरीका मालूम नहीं।" 'शब्द' या वह 'नाम'; हमें (उसे) पुकारना ही नहीं आता। कोई पूर्ण महात्मा ही हमें वह युक्ति सिखा सकता है जिससे हम प्रभु के ध्यान को उसी तरीके से अपनी ओर खींच सकते है जैसे सोये हुये जीवात्मा के अन्दर निहित 'अनन्त शक्ति'। बाईबिल में इसे 'लोगोस' तथा उपनिषद् नाद कहते हुये बताया गया है कि-

"आरम्भ में 'शब्द' था, 'शब्द' परमात्मा के साथ था तथा 'शब्द' ही परमात्मा था। इसी 'शब्द' से सब वस्तुएं बनी तथा कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो उसके बिना बनी हो"।

'शब्द', जिसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'नाम' कहकर, "राम और ब्रह्म दोनों से बड़ा माना है।" उन्होंने कहा कि-"इष्टदेव भगवान राम भी, श्री प्रभु" नाम की महिमा नहीं गा सकते। ब्रह्म के निर्गुण और सगुण स्वरूप-अकथ, अगाध I, अनादि और अनूप है परन्तु " श्री प्रभु नाम" इन दोनों से बड़ा है। वह नाम करोड़ों जीवों का उद्धार करने वाला है:-

"नाम अनेक गरीब निवाजे।
लोक बेद वर बिरद बिराजे।।
कहू कहा लग नाम बड़ाई।
राम न राके नाम गुडगाई।।
अगुण सगुण दोऊ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
मोरे मत वड नाम दोऊ ते।
किये ये ही युग निज बसबूते।।

निर्गुण ते इह भाँति वड़, नाम प्रभाव अपार।
कहूँ नाम वड़ राम ते, निज विचार अनुसार।।
ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदान।
रामचरित शत कोटि महि, लीये महेरा जीये ज्ञान।।

इस प्रकार सर्वभूत व्याप्त मय यह 'नाम' या 'शब्द' क्या है? जो कि सभी पुराणों, उपनिषदों तथा सन्त:-वाणीयों द्वारा सराहा गया। जैसे पर्वत पर चढ़ने के लिये लक्ष्यालम्ब, छत पर पहुँचने के लिये उचित उपारलम्ब तथा संसार की समस्त वस्तुओं की प्राप्तिकरण में किसी न किसी प्रेरणा या उपकरण सहायक हैं उसी प्रकार से 'व्यष्टि एवं समष्टि'- जन्य उद्धार हेतु यह 'नाम' या 'शब्द' है- 'अजपा-गायत्री'। जिसे सर्वसमर्थ सद्गुरु द्वारा शक्तिपातित होकर 'जीव' कैवल्य की भी कामना नहीं करता; उसे तो परम करुणनिधान सद्गुरुदेव के पदपंकजामृत ही सन्तुष्ट कर देते हैं। अतः श्री प्रभु 'शब्द' ही अमोघ ब्रह्म हैं।

• • •

विनयांजलि:

श्री सूर्यकान्त पाण्डेय

पारब्रह्म परमात्म प्रभु, त्रिभुवन के तुम सार।
तरनि के तट पर प्यासा मैं, पाकर जनम हजार।।1।।
वन उपवन सब दीखते, दिखें नहीं वह नाथ।
प्रा:त करत जिन्हें स्मरण, होते भव से पार।।2।।
कटत कटत प्रभु कट गयी, कितनी रही ये राज।
जितनी जैसी बच गयी, वह समर्पित आज।।3।।
अणिमा, महिमा और लघु, जानें न गरिमा सार।
ईशवशत्व प्रकाम्य सब, हैं प्रभु आप के हाथ।।4।।
अन्धकार का नाश करि, देत्त प्रकाश लखाय।
ऐसे सद्‌गुरु चरण कों, बन्दँहु बारम्बार।।5।।
सुना प्रभु श्री आदि से अन्त अनन्त ये बात।
जो गुरु जिस को राखियें, वो जीव न कबँहु बिलात।।6।।
रामरती को पार कर, किया बहुत उपकार।
मानिक दलाल के कर्म का, तुम्हीं उठाया भार।।7।।
सांई दास पर करि कृपा, दिया उसे निज ज्ञान।
पर निज अहं के कारणें, वो गया पातकी धाम।।8।
ऐसे प्रभु जी आप ने, हरे अनेकन भार।
जीव जगत के हेतु प्रभु, रूप धरे हैं हजार।।9।।
योग योगेश्वर सन्तति, श्री चरणों का ज्ञान।
ध्यान धरहिं प्रभु देत हैं, परमानन्द महान।।10।।
सिद्धों के सरताज प्रभु, श्री रामलाल अवतार।
अब की पार उतारियो, ये विनय हैं बारम्बार।।11।।

माताजी पर श्री गुरुदेव जी की महान कृपा

श्री गुरुदेव जी की कृपापात्रा श्रीमती सुशीलादेवी

श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) एत्मादपुर, आगरा

परम् गुरु सान्निध्य प्राप्त करने के प्रारम्भिक दिनों से ही पूज्यनीय माताजी श्री प्रभुजी की एक विशेष कृपा पात्रा रहीं हैं। माताजी के पति श्री डी॰ एस॰ सिसोदिया जी ने गुरुदेव की महान कृपा से प्रेरणा लेकर, श्री महाप्रभुजी के योग प्रचार सम्बन्धी अनेकों प्रोगामों कराये। बुलन्दशहर तथा आगरा के प्रोग्राम में, शामली के रहने वाले गुरुदेव के परम भक्त श्री योगेन्द्रसिंह वर्मा जी सपरिवार सम्मिलित हुए। गुरु भाई-चारे के नाते, श्री वर्मा जी श्री सिसोदिया के परिवार से स्वाभाविक स्नेह करते थे।

कुछ वर्षों के उपरान्त माताजी को शामली जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री दिनेश सिंह सिसोदिया जी (इन्सपेक्टर पुलिस) का ट्रान्सफर शामली हो गया था। अपने पुत्र से मिलने के लिए वे शामली पहुँची। श्री वर्माजी को माताजी के शामली आगमन पर विशेष खुशी हुई। स्नेहवश वे अक्सर माताजी से मिलने उनके घर पर आते और उनके साथ घण्टों बैठ कर गुरुचर्चा का आनन्द लेते थे।

एक दिन वर्माजी के यहाँ नीमसार के एक सिद्ध महात्माजी पधारे हुए थे। वे चौबीस घण्टों में केवल एक बार भोजन करते थे। मक्के की रोटी, मट्ठा आदि अधिक पसन्द करते थे। श्री वर्माजी की महात्माजी में प्रबल आस्था थी अतः उन्होंने अपने आवास पर उनके सत्संग कार्यक्रम का एक छोटा-सा आयोजन किया। वर्माजी ने माताजी को सपरिवार कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए निवेदन किया। माताजी अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री दिनेश जी के साथ सत्संग में पहुँची और महात्माजी का दर्शन प्राप्त किया। माताजी ने उन सिद्ध महात्मा जी को दूर से ही प्रणाम कर लिया किन्तु चरण स्पर्श नहीं किया। मन में यह धारणा बनी रही कि जब हमने एक बार अपने सर्व समर्थ गुरुदेव के पावन श्री चरणों में अपना शीश समर्पित कर दिया है, तो अब इस शीश को किसी अन्य के आगे झुकने की कोई आवश्यकता नहीं है। सभी लोगों ने महात्मा जी के ज्ञानमयी अमृतवचनों को प्रेमभाव से श्रवण किया। श्री वर्मा जी के विशेष आग्रह करने पर माताजी ने कुछ भजन अपने गुरुदेव के स्वरूप में लीन होकर महात्मा जी के समक्ष प्रस्तुत किये। सत्संग की समाप्ति पर पुनः सभी ने महात्मा जी को शीश झुकाकर प्रणाम किया। इस बार वर्माजी की धर्मपत्नी जी ने धीरे से माताजी से कहा कि बहिन जी, महात्मा जी को चरण स्पर्श कर लो आपने पहले भी नहीं किया था। माताजी ने उनकी बात का मान करते हुये, लेकिन अनिच्छापूर्वक महात्मा जी के चरणों में अपना शीः झुका दिया लेकिन उन्हें बड़ा आश्चर्य

हुआ, जब उन्होंने देखा कि चरणों में काफी देर तक झुके रहने के बाद भी महात्मा जी उन्हें कोई आशीर्वाद नहीं दिया। कुछ लज्जित सी हुई वो अपने स्थान पर बैठ गई। इससे भी ज्यादा आश्चर्य वर्मा जी व उनकी पत्नी को हुआ उन्होंने देखा कि महात्माजी ने तीनबार अपना हाथ आशीर्वाद प्रदान करने हेतु माताजी के सिर पर रखना चाहा किन्तु बिना सिर को स्पर्श किये ही ऊपर उठा लिया। वर्माजी को इस बात से थोड़ा दुःख पहुँचा कि महात्माजी ने बहिन जी (माताजी) को अपने आशीर्वाद से वंचित रखा।

दूसरे दिन वर्माजी माताजी के घर पहुँचे और कहने लगे कि बहिन जी, ये तो मुझे महात्माजी से अवश्य पूछना है कि आपने ऐसा क्यूँ किया? माताजी ने इस विषय में अपनी कोई रुचि नहीं दिखलायी फिर भी वे महात्मा जी के समीप जा पहुँचे। उस समय महात्मा जी शामली में किसी सर्राफ के यहाँ ठहरे हुए थे। वे घर की क्यारी में से धनिये की पत्तियाँ तोड़ रहे थे। जैसे ही उनकी दृष्टि वर्माजी पर पड़ी उन्होंने तुरन्त उनसे कहा, " मैं जानता हूँ कि तुम अपनी किस शंका निवृत्ति के लिए आए हो।" तुम्हारी शंका का समाधान तो हम कर देंगे लेकिन पहले जितने भी लोग यहाँ उपस्थित हैं उन्हें शीघ्र यहाँ से हटा दो ताकि अकेले में कुछ बातें हो सकें। सर्राफ कहने लगा कि महाराज क्या मैं भी यहाँ उपस्थित नहीं रह सकता? महात्मा जी ने उत्तर दिया अभी तुम बाहर चले जाओ बाद में हम तुम्हें सब कुछ बतला देंगे। सभी लोगों के यहाँ से हट जाने के पश्चात महात्मा जी कहने लगे, " तुम यही तो जानना चाहते हो कि मैंने बहिनजी को आशीर्वाद क्यों नहीं दिया।" तो सुनो, उनके ऊपर उनके गुरुदेव की महान कृपा है मैंने तीन बार उन्हें आशीर्वाद देने का साहस किया लेकिन सिर पर हाथ नहीं रख सका, मैंने अपना हाथ पीछे खींच लिया। इस उत्तर को सुनकर वर्माजी को एक और नवीन शंका ने घेर लिया। वे पूछने लगे, "परम् गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से तो हम भी दीक्षा प्राप्त हैं और काफी समय से गुरु चरणों के सेवक हैं किन्तु आपने हमें तो आशीर्वाद दे दिया तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि गुरुदेव की कृपा हमारे ऊपर नहीं है। क्या सचमुच वास्तविकता यही है? प्रत्युत्तर में बात को स्पष्ट करते हुए महात्मा जी ने कुछ इस प्रकार कहा देखो भाई, इस बात को कुछ ऐसे समझ लो कि दो खेत हैं एक खेत मे पर्याप्त मात्रा में जल है दूसरे में बहुत कम है। अब जिस खेत को पानी की आवश्कता है पानी उसी खेत को तो उपलब्ध कराना होगा। तुम्हारे साथ भी कुछ ऐसी ही स्थिति है।

(उपरोक्त घटना क्रम से मेरे हृदय में उमड़कर आये भावों को मैं यहां व्यक्त कर रहा हूँ। माताजी की घटना को थोड़ी देर के लिए प्रतिहत करके सिद्धयोग के पाठकों से क्षमा चाहता हूँ।)

गुरुदेव के जितने भी पुराने शिष्य हैं वे तो गुरुतत्व तथा उसकी महत्ता को भलीभाँति समझते ही हैं किन्तु उपरोक्त लेखांश को पढ़कर नये योग जिज्ञासु पाठकों के शंकाग्रस्त हो जाने की सम्भावना पैदा हो जाती है। व्यावहारिक रूप से कुछ लोगों ने इस बात पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त भी की हैं। ऐसे लोग भ्रमित होकर सोचते हैं कि जब गुरुदेव की महान कृपाएँ किसी-किसी पर ही होती हैं तो शेष लोगों को गुरुदेव की भक्ति से क्या लाभ? लेकिन उन लोगों का ऐसा

सोचना कदापि उचित नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि गुरुदेव का ऐसा कोई बालक नहीं जिस पर उन करुणानिधान की करुण-कृपा न हो थोड़ी अथवा ज्यादा लेकिन अनुकम्पा तो सभी पर है। माताजी ही केवल मात्र ऐसी महिला नहीं है जो श्री गुरुदेव जी की विशेष कृपापात्रा हैं, बल्कि गुरुदेव के ऐसे अनेक बच्चे हैं जिन पर उनकी अद्भुत कृपाऐं रही हैं और वे यौगिक शक्तियों से पूर्णतः सम्पन्न हैं।

अभिप्राय यह है कि गुरुकृपा तथा शिष्य की पात्रता के मध्य समानुपाती सह सम्बन्ध होता है। अर्थात् जैसे-जैसे हमारी पात्रता में वृद्धि होती जाती है, उसी अनुपात में हम गुरुकृपा को प्राप्त करने के अधिकारी बनते चले जाते हैं। साधक द्वारा पात्रता का निर्माण किये जाने पर ही गुरुकृपा की ग्रहणता सम्भव है। उदाहरणार्थ पाँच लीटर दूध को स्थान देने के लिए पाँच लीटर धारिता अथवा पात्रता वाले पात्र की ही आवश्यकता होती है। इससे से कम में बात नहीं बनती है अर्थात पाँच लीटर से कम धारिता वाले पात्र में पाँच लीटर दूध किसी भी प्रकार से नहीं ठहर सकता। यही सिद्धान्त सद्गुरुकृपा प्राप्ति के सम्बन्ध में लागू होता है। निम्न स्तर की पात्रता वाले गुरुभक्त के लिए उच्चस्तरीय गुरुकृपा प्राप्त करना असम्भव बात है। प्रथम पात्रता निर्माण है तत्पश्चात गुरुकृपा है। हम सभी लोग प्रायः गुरुकृपा की कामना पहले करते हैं, दूसरी और अपनी पात्रता को लेकर कभी गम्भीर नहीं रहते। जो लोग उचित पात्रता के अभाव में, गुरुकृपाओं को प्राप्त करने की चेष्टाऐं किया करते हैं वे व्यर्थ अपना समय नष्ट करते हैं। आध्यात्मिक जगत में ईश्वरीय कृपा तथा उसकी दिव्य शक्तियों को प्राप्त करने की हमारी पात्रता का निर्धारण विशेषतः हमारे पूर्व जन्मों के शुभकर्मों से सम्बन्धित होता है। शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप कर्माशय में पुण्य तथा पाप का संचय होता रहता है। पुण्य ईश्वरीय शक्ति का प्रदाता होता है। और परमात्मा के निकट ले जाने वाला होता है। पापों का अत्यधिक संचय मनुष्य को शक्ति विहीन करता है और उसके आध्यात्मिक पतन का कारण बनता है। निरन्तर पुण्यों की कमाई करना मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। केवल एक परम् ब्रह्म रूपी परमेश्वर को छोड़कर सभी ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्रादि देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि अपने पुण्यों के आधार पर ही अपने-अपने पदों पर शोभा पा रहे हैं। अहंकारादि विकारों के उत्पन्न होने पर इन्हें भी अपने पद से च्युत होने का भय बना रहता है। ब्रह्माजी, इन्द्रादि देवताओं को, केवल अहंकार के कारण, परम् परमेश्वर ने किस प्रकार अपमानित किया ये हम पौराणिक कथाओं में पढ़ते चले आ रहे हैं। कारण वही पात्रता का क्षीण होना। पात्रता के कमजोर पड़ते ही हमारी ईश्वरी शक्ति पर पहले आघात होता है। इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए पात्रता निर्धारण हेतु पुण्यों का संचय करना अति आवश्यक है। पुण्यों से ही शक्ति है। शक्ति विहीन व्यक्ति कीट-पतंगों की भाँति है जो मनुष्य जन्म को, जो अति दुर्लभ है, कलंकित करता है। समस्त सृष्टि में केवल शक्ति का ही खेल तमाशा है।

शक्ति की उत्पत्ति एवं विकास मनुष्य के शुभ कर्मों द्वारा संचयित पुण्यरूपी भूमि में ही सम्भव है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि

वह अपने पुण्यों को बढ़ाता रहे। जो लोग अपने पूर्व जन्मों में श्री प्रभुजी के सुसंस्कारी बालक रहे हैं उनकी आज्ञाओं का सदा श्रद्धापूर्वक पालन करते रहे है। मन, कर्म एवं वचन से महान पुरुषार्थ करते हुए धर्म का मार्ग अपनाने वाले रहे हैं। जिनका प्रत्येक पुरुषार्थ निःस्वार्थ तथा मानव हित के लिए ही रहा है। जिन्होने आध्यात्म से प्रेरित होकर विशुद्ध ज्ञानार्जन के लिए अनेक कठोर तप एवं साधनाऐं की होंगी ऐसे ही लोग वर्तमान में गुरुदेव के विशेष कृपापात्र होते हैं। पूर्वजन्मों के पुरुषार्थ से कमाये गये पुण्य जब वर्तमान जन्म के पुरुषार्थों से कमाये गये पुण्यों में सम्मिलित हो जाते है तो पुण्यों के आधिक्य में उनमें अत्यधिक दृढ़ता आ जाती है। पुण्याकार विशाल और प्रबल होकर शीघ्रताशीघ्र फलदायी हो जाता है। पुण्यों का उदभव कैसे होता है? इसके उत्तर में हमारे धार्मिक शास्त्रों की उद्घोषणा है कि पुरुषार्थों के अभाव में पुण्यों का उदय कल्पनातीत है। पुरुषार्थ रूपी वृक्ष पर ही सुन्दर फल लगता है। जिस प्रकार फल से बीज है, बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से पुनः फल की प्राप्ति है ठीक इसी प्रकार जो पुण्यरूपी फल है वह शुभकर्म रूपी बीज प्रदान करता है जिसे संसार रूपी भूमि में मानव हितार्थ बो दिया जाता है तो पुरुषार्थ रूपी वृक्ष का निर्माण होता है जिससे पुनः पुण्यरूपी फलों की प्राप्ति होती है। अर्थात पुण्यों के अधिकाधिक संचय के लिए केवल पुरुषार्थ ही श्रेयस्कर है। उपर्युक्त सिद्धान्त से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य के संचयित पुण्य ही उसे और अधिक पुण्य करने की प्रेरणा देते हैं। जिस प्रकार योग से योग उत्तरोत्तर बढ़ता है ठीक उसी प्रकार हमारे संचयित पुण्य ही हमें और अधिक पुण्य कमाने के लिए प्रेरित करते हैं। निरन्तर पुण्यों के इक्ट्ठे होने से बनी पात्रतानुसार साधक अपने आध्यात्मिक मार्ग में ज्ञान के एक ऐसे निश्चित बिन्दु पर पहुँच जाता जिसके नीचे रहने तक साधक की बुद्धि स्थिर नहीं रहती मन पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं रहता आध्यात्मिक पतन का भय बना ही रहता है किन्तु इस ज्ञान के निश्चित बिन्दु से जो साधक ऊपर उठ जाता है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। वह निरन्तर ऊपर उठता ही चला जाता है फिर पीछे मुड़कर नहीं देखता अर्थात पुनः सांसारिकता में आसक्त नहीं होता। परम् रामभक्त गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के साथ यही तो हुआ था तभी तो उन्होंने लिख डाला-

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं। रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहीं।।

सन्त श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि "अब तक मैं अंधकारमय संसार में, इन्द्रियों को सुख देने वाली सांसारिक सुखों की गहरी नींद में ऐसे मस्त सो रहा था कि जागने को अर्थात सांसारिकता से पीछा छुड़ाने को मन ही नहीं करता था। भगवान श्री राम की महान कृपा से अज्ञानरूपी रात्रि बीत गई है। अब मैं जाग गया हूँ। मुझे ज्ञान हो गया है। " यह ज्ञान ही वह निश्चित बिन्दु है जहाँ पहुँचकर मनुष्य अज्ञानतावश होने वाले पाप कर्मों पर सहज नियन्त्रण पा लेता है। ज्ञान के इसी बिन्दु पर ईश्वर में प्रीति दृढ़ होती है यहीं से सच्ची भक्ति का जन्म होता है। आज के युग में लोगों ने भक्ति का स्वरूप ही बिगाड़ दिया है। दोनों वक्त ईश्वर की आरती करने वाले भक्त, कथा कराने वाले व सुनने वाले भक्त तथा कथा वाचक भी भक्त रामायण-

गीता को रटने वाले भक्त। हर तरफ भक्त है और उनकी भक्ति है। यदि किसी को ईश्वरानुग्रह से सद्गुरु मिल गये और उसकी गुरुदीक्षा हो गई तो ये समझ लेता है कि मेरी तो कुण्डली जाग्रत हो गई। किसी तरह प्रवचन करने की योग्यता प्राप्त कर ली और बिना पुरुषार्थ किये ही बन बैठे सबके गुरु। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करने चला है आज का मानव। कोई समझदार व्यक्ति यदि इन्हें समझाने की कोशिश करे तो इनका उत्तर होता है कि शास्त्रों में लिखा है कि कलयुग में मनुष्य को भव से तराने के लिए ईश्वर की थोड़ी सी भक्ति पर्याप्त है। शास्त्रोपदेशों को ठीक से न समझने के कारण कितनी बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठता है मनुष्य। इतने से काम नहीं चलता है गुरु शरण में पहुँचने के बाद भी बहुत पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। एक रोज प्रातः श्री गुरुदेव भगवान अपनी कुर्सी पर विराजमान थे। मैं तब बारहवीं कक्षा का विद्यार्थी था। मैं श्री गुरुदेव के श्री चरणों में प्रणाम करके उनकी दिव्य कृपा छाया में वहीं बैठ गया। आश्रम में निर्माण कार्य चल रहा था। गुरुदेव जी की कृपा दृष्टि दो-चार गुरुभाइयों पर पड़ी जो पड़ी जो ईंटों को ढोकर यथास्थान पहुँचा रहे थे। उन्हें देखते ही गुरुदेव कहने लगे, "अरे, मैं कहता हूँ कुछ पुरुषार्थ कर लो बहुत अच्छे रहोगे। मैं तुरन्त ईंटों को ढोने के लिए उन गुरुभाईयों के साथ सहयोग करने लगा। मैंने देखा गुरुदेव ने जब ये बात कही तब उनकी वाणी में बड़ी गम्भीरता और वेदना थी। उस दिन ये बोध हुआ कि पुरुषार्थ करना मनुष्य के लिए कितना महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में मनुष्य न जाने कितना पीछे रह जाता होगा। उस दिन मैं समझ सका पुरुषार्थ के मूल्य को। गुरुदेव के लाड़ले बच्चे बस इसी कर्म से बचना चाहते हैं। शायद इसीलिए गुरुदेव की वाणी में गम्भीरता के भाव उभर आये थे। पुरुषार्थ ईश्वर को प्रसन्न करते हैं गुरुदेव को रिझा लेते हैं। पुरुषार्थ के बल पर ही सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की पात्रता का निर्माण होता है फलस्वरूप अतिप्रसन्न होकर सद्गुरु भगवान पुरुषार्थियों में ज्ञान की एक बूँद छोड़ देते हैं यही शिष्य के प्रति सद्गुरु का प्रमुख कार्य होता है- अज्ञान दूर करके ज्ञान प्रदान करना। यही वह ज्ञान का बिन्दु है जहाँ साधक को अच्छे-बुरे का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है। वह किसी भी प्रकार पापकर्म करने के लिए तैयार नहीं होता। भविष्य में सांसारिक जीवन से बचने की शपथ लेता क्योंकि वह ज्ञान होने पर यह जान जाता है कि यही जन्म-मरण का ज्ञान की अवस्था में आकर भक्ति करनी नहीं पड़ती साधक के अन्दर स्वतः ही पैदा होती है। ऐसा ही अनुभव करने पर कबीर दास जी ने कहा-

"बरसा बादल प्रेम का भीज गया सब अंग।"

सचमुच ईश्वर प्रेम की वर्षा में स्नान करने पर अंग-अंग विकाररूपी कूड़ा करकट सब बह जाता है। समस्त विकारों के नष्ट होने पर प्राणी एकदम निर्मल हो जाता है। ज्ञान होने पर जब गोस्वामीजी को यह बोध हुआ कि अज्ञान ही दुःख का मूल है, पतन का एक मात्र कारण है। तब वे जैसे किसी जटिल दुःखरूपी जाल में फँसने से बच गये हों, राहत की श्वाँस लेते हुए कहते हैं, **"अब न नसैहौं"**

अर्थात हे प्रभु इस बार आपने अपनी महान अनुकम्पा से मुझे बचा लिया है अब भूलकर भी मैं इस अज्ञानरूपी रात्रि में सोना पसन्द नहीं करूँगा अर्थात सांसारिक सुखों की

ओर पुनः प्रवृत्त नहीं होऊँगा।

जब महात्मा कबीर को भी ऐसा सद्ज्ञान हुआ तो उन्होंने निर्भीक होकर सारी दुनिया को चेतावनी दी-

हम न मरैं मरिहैं संसारा।
हम कूँ मिल्या जियावान हारा।।

गुरु भक्तों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले सन्त कबीर कहते हैं- जीवात्म को अजर-अमर बनाने वाले सद्गुरु का दुर्लभ सत्संग मैंने पा लिया है उनकी महान कृपा से प्राप्त ज्ञान की निर्मल ज्योति के प्रकाश में जीवन जीने के सही मार्ग का दर्शन कर लिया अर्थात मैंने जीने का श्रेष्ठ ढंग जान लिया है। अब मैं क्यों मरुँगा? मरेंगे तो वो संसार के समस्त लोग जो निगुरे हैं, जिन्होंने गुरु से कोई ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। भाव यह है कि गुरु की महान कृपा को प्राप्त होकर सांसारिक मोह नहीं रहता और प्राणी कबीर की भाँति जन्म-मरण की परम्परा से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है। दूसरी ओर वे लोग जो पुरुषार्थ कर्मों की क्षीणता में, सद्गुरु की कृपा पाने के अधिकारी नहीं बन सके हैं, अवश्य मरेंगे अर्थात वे संसार के दुःखमूलक जन्म-मरण के चक्र में सदैव फँसे रहेंगे।

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के परम अनन्य भक्त श्री सूरदासजी ने भी, महान पुरुषार्थों द्वारा पुण्यों के परिपक्व होने पर, जब ज्ञान के प्रारम्भिक बिन्दु को स्पर्श किया तो उन्होंने भी यह जान लिया कि संसार की सुख रूप में भासने वाली प्रत्येक अनित्य वस्तु ही दुःख का यथार्थ कारण है। यही त्यागने योग्य है। सूरदास जी अपने सद्गुरु श्री वल्लभाचार्य जी से अपार स्नेह करते थे। उन्हीं की कृपा से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। इस ज्ञान के फलस्वरूप ही वे कृष्ण की महिमा को जान सके और उनकी अनन्य भक्ति में सदैव डूबे रहे। विरक्त होने से पूर्व वे अपने परिवार के साथ रहा करते थे। उनका विवाह भी हुआ था। विरक्त होने पर सूरदास को सांसारिक जीवन में कोई रुचि नहीं रही। संसार को प्रत्येक सुख देने वाली वस्तु कड़वे फलों की भाँति कष्टकर तथा पतन की कारण अनुभूत होती थी। विरक्त पुरुषों की भाँति सूरदास जी के रहन-सहन के समस्त ढंग साधारण मनुष्यों के रहन-सहन के ढंग से एक दम भिन्न हो गये। अज्ञानी सामाजिक व पारवारिक लोगों ने जब उन्हें विलासतापूर्ण सांसारिक जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर किया तो वे बहुत दुःखी हुऐ। वे जानते थे कि अब मैं ऐसा कभी नहीं कर सकूँगा। ईश्वर की निर्मल भक्ति के प्रभाव से उन्हें ज्ञान के वे चक्षु प्राप्त हो गये थे जो उन मूर्ख मनुष्यों के पास नहीं थे। इन दिव्य चक्षुओं की सहायता से वे यह जानते थे कि ये अज्ञानी जड़ मनुष्य मुझे जिस भोग-विलासी जीवन के मार्ग में लाना चाहते हैं, वह इन लोगों की दृष्टि में तो अति सुखमय है लेकिन वास्तव देखा जाय तो घोर नरक में ले जाने वाला है। मथुरा के गऊघाट पर श्री नाथ जी के मन्दिर में महाकवि कृष्ण भक्त सूरदास जी लोगों को समझाने हेतु व्यथित मन से तीव्र स्वरों में गाने लगे--

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यौ,
क्यों करील फल भावै।।

उपर्युक्त पक्तियों मे सूरदास जी दृढ़ विश्वास

के साथ कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण को छोड़कर मुझे कहाँ सुख प्राप्त होगा? अर्थात श्रीकृष्ण के चरण कमलों में प्रीति करने का जो परम दिव्य नित्य आनन्द है उसकी तुलना में नश्वर संसार के इन्द्रियों को सुख देने वाले समस्त आनन्द अति तुच्छ प्रतीत होते हैं इनसे मेरे मन को परम शान्ति नहीं मिल सकती। जब लोगों ने उन्हें अज्ञानतावश संसार के मिथ्या सुखों का प्रलोभन दिया तो प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, " जिस भौंरे ने कमल-रस का पान कर लिया हो, तब वह क्या करील के कड़वे फलों को पसन्द करेगा?" गुरुदेव जी अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि बड़े आनन्द को प्राप्त कर लेने पर छोटे आनन्दों में आसक्ति नहीं रहती। इस सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट करने के लिए गुरुदेव बड़े प्यार से समझाकर कहते, "अरे भाई, जिसे रोज हलवा-पूरी खाने को मिलता हो वह क्या फिर दाल-रोटी खाना पसन्द करेगा?"

यही कारण है कि सूरदास जी, लोगों के द्वारा लाख बहलाने-फुसलाने पर भी भौतिक सुखों की ओर उन्मुख नहीं हुए। सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी हों चाहें महात्मा कबीर हों या श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त सूरदास हों मीरा हों, सहजोबाई हों या चैतन्य महाप्रभु आदि महापुरुष के पास ईश्वर के प्रति, अपने सद्गुरुदेव जी के प्रति सच्ची निर्मल भक्ति थी, हमारे जैसी प्रदर्शनि वाली भक्ति नहीं थी। प्रबल भक्तियुक्त साधक की समस्त वासनाऐं समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य के अन्दर भौतिक सुखों की कामनाओं का जन्म उसकी वासनाओं के कारण ही होता है। जहाँ वासनाऐं नहीं होंगी तो वहाँ कामनाएँ कैसे प्रकट होंगी। वासनाएँ तो हमारे जैसे भक्ति के प्रदर्शनकारियों के पास ही होंगी जो असंख्य वासनाओं में जकड़े हुए हैं। तभी तो अति मीठे जल की तलाश में घाट-घाट का पानी पीते फिरते हैं हम। साक्षात शिवरूप स्वयं ईश्वर जैसे सद्गुरु के होते हुऐ भी न जाने कितने गुरु और बना लेते हैं। सोचते हैं कि एक गुरु से हमारे स्वार्थ की पूर्ती नहीं होती है तो कोई बात नहीं हम दूसरे गुरु से करा लेंगे यानि किसी न किसी गुरु से अपने स्वार्थों की पूर्ती हो ही जायेगी। इस घोर कलयुग में लोगों के लिए अनेक गुरु करना ऐसा ही जैसे रसोई में स्तेमाल किये जाने वाले गैस सिलेण्डरों का इकट्ठा करना एक खाली हो जायेगा तो तुरन्त दूसरे से काम निकाल लेंगे। यदि दूसरा भी नहीं तो तीसरे से । कबीर दास जी ने ऐसे लोगों को अंधा बतलाया है। वे कहते है-

कबिरा ते नर अन्ध है जो गुरु माँगे और।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।

यदि उपरोक्त सन्त महापुरुषों के जैसी निर्मल भक्ति हमारे अन्दर भी विद्यमान हो जाये तो सारे संशय मिट जायें। किसी गुरुभाई ने तर्क किया कि भाई सूर-तुलसी तो बहुत महान थे उनकी अवस्था तक पहुँचना बहुत मुश्किल कार्य है। मैं कहता हूं कि महान ईश्वरानुकम्पा से किसी अधिकारी पुरुष को यदि श्रेष्ठ सद्गुरु मिल जायें, तो वह उनके प्रति पूर्णरूपेण निष्ठावान होकर, स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है। तुम सूर-तुलसी की बात करते हो। हमारे परम् पूज्य गुरुदेव जी महाराज कहा करते थे,- "आदि पुरुष साक्षात ईश्वर मेरे गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी की कृपा दृष्टि जिस पर पड़ जाती है, वह कृष्ण हो जाता है।"

यदि हम वासनाओं से मुक्त होना चाहते हैं तो महापुरुषों के व्यक्तित्व से अवश्य कुछ सीखना चाहिए। किन्तु इसके लिए पात्रता का होना अति आवश्यक है अर्थात निर्मल भक्तियोग जैसे ईश्वरीय गुण को ग्रहण करने के लिए हमें इसके योग्य भी तो होना चाहिए इसी का नाम है पात्रता। निरन्तर किये गये पुरुषार्थों से हमारी पात्रता का निर्माण होता है। और पुरुषार्थ केवल वही कर सकता है जिसमें समर्पण भाव होगा। समर्पण भाव के अभाव में आध्यात्मिक उन्नति अवरुद्ध रहती है। गुरुदेव के प्रिय तो हम सभी हैं, तभी तो गुरुदेवजी ने हमारे ऊपर परम अनुग्रह करके हमें अपनी शरण में लिया है। हम लोगों को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए परम् गुरुवर के पावन श्रीचरण हरेक किसी को नसीब नहीं हुए हैं तो फिर हम और आप गुरुदेव के ह्रदय के टुकड़े कितने सौभाग्यशाली हैं। यदि किसी को गुरुदेव के सान्निध्य में बैठने का एक सेकण्ड भी मिल गया है तो उसे इस अनमोल घड़ी को एक महान उपलब्धि समझना चाहिए। कालान्तर में यही 'सौभाग्य की अल्पघड़ी' किसी न किसी प्रकार से हमारे लिए कल्याणकारी फल ही लेकर आयेगी। समस्त योग विद्याओं के प्रवर्तक, योगिश्रेष्ठ, सिद्धों के शिरोमणि, और तत्व ज्ञानियों से सम्मानित जीव-जीव का प्रतिपल कल्याण करने वाले असीम स्नेह-करुणा की साक्षात मूर्ति मेरे-तुम्हारे निराले गुरुदेव ने अपने पावन मुखार बिन्द से यहाँ तक कह दिया है कि - "जिन लोगों को मैंने गुरुदीक्षा प्रदान की है वे ये न समझें कि केवल वही मेरे बच्चे हैं। जिन्होंने कभी एक बार भी मेरी वाणी मात्र को ही श्रवण कर लिया है तो ये भी मेरे दीक्षित बच्चे ही हैं।" इस सृष्टि में यदि कुछ अहितकारी है तो वह सांसारिक भोगों-उपलब्धियों में हमारी अतृप्त रुचि का होना। जिन भौतिक सुखों से हमारा अमंगल होता हो अथवा आध्यात्मिक पतन होता है ऐसी वस्तुओं को गुरुदेव भला हमें क्यों प्रदान करने लगे? सद्गुरु तो हमारा कल्याण करने के लिए अवतरित होते हैं हमारे आगे भौतिक उपलब्धियों का ढेर लगाने के लिए नहीं। सद्गुरुदेव जी तो हमारे द्वारा किये गये जन्म-जन्मान्तरों के घोर पाप कर्मों से निर्मित कुसंस्कारों को काट-काट कर, काम, क्रोध मद लोभ तथा मोह जैसे विकारों का शमन करते हुए हमें बिल्कुल निर्मल बनाकर इस संसार रूपी चक्रवृद्धि भँवर से पार कराते हुए अपने परमधाम की ओर ले जाने का प्रयास प्रतिक्षण करते ही रहते हैं। गुरुदेव के द्वारा जब हमारा कोई मनोरथ पूरा होते नहीं दीखता (जो हमारे लिए अहितकरी है ऐसा गुरुदेव जानते हैं) तो ऐसी परिस्थितियों में ही हम अन्य सन्त-महात्माओं, सिद्धों, तांत्रिकों, पण्डितों तथा ओझाओं आदि को इसी धारणा से ढूंढ लेते हैं कि शायद अमुक कार्य इन महानुभावों की कृपा से सिद्ध हो जाये। बस यहीं हमसे भारी भूल हो जाती है। एक ओर तो हम स्वयं को गुरुदेव के श्रीचरणों में समर्पित शिष्य बताते हैं दूसरी ओर हम अपनी धारणा व चिन्तन को कहीं और लगा देते हैं। जब हमें अपने गुरुदेव पर पूर्णरूपेण भरोसा ही नहीं है तो समर्पण कहाँ रहा? गुरुदेव उचित अवसर पर हमारी समस्त मनोकामनाऐं की पूर्ति करते हैं चाहे वे लौकिक हों अथवा पारलौकिक। किन्तु यदि किसी मनोरथ से उनके प्रिय बालकों का तनिक भी अहित होता है तो उस मनोरथ को गुरुदेव कभी पूरा

नहीं करते वह उनके चरणों में बैठकर चाहे कितना भी निवेदन करे, हठ करे।

जिसने गुरुदेव को प्रसन्न रखना सीख लिया, रिझाना सीख लिया उसका समर्पण भाव गुरुदेव के चरणों में स्वतः ही बन जाता है। गुरुदेव जी के द्वारा दर्शाये गये मार्ग का अनुसरण करना, उनकी कदापि अवज्ञा न करना, उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारना, उनके सद्गुणों को अपने आचरण में सुशोभित करना, अहंकार मुक्त होकर सदैव योग परायण रहना, शत्रु-मित्र सभी से प्रेमपूर्वक व्यवहार करना आदि गुरुदेव भगवान को प्रसन्न रखने के, रिझाने के सरलतम् सूत्र हैं।

अब मैं माताजी (श्री मति सुशीला जी) के घटनाक्रम को आगे बढ़ता हूँ। माताजी को आशीर्वाद प्रदान करने में बनी असमर्थता का रहस्योदघाटन करने के उपरान्त उन सिद्ध महात्माजी ने वर्मा जी से कहा कि आप बहिन जी को बतलाएँ कि आपके गुरुदेव तो स्वयं विश्वनाथ हैं मेरी शक्ति उनकी विराट्ता के सामने नगण्य है। फिर बहुत प्रसन्न होकर वे बोले मैं बहिन जी (सुशीलाजी) से अत्यन्त खुश हूँ उन्होंने जो गुरु-भजन सुनाए उनमें गुरु प्रेम भक्ति के पूरे भाव थे, कोई बनावटीपन नहीं था।

(क्रमशः)

— ✿ —

जय जय जयति संवाई धाम

(ब्र. बृजमोहन वाशिष्ठ जिज्ञासु)

जो समर्थ प्रभु राम लाल की साधन थली ललाम!
योग-शक्ति सुखदा समर्थिनि, कलुष हरण आरोग्यवर्धिनी!!
श्री गुरु पद पंकज प्रवर्तिनी, मन मोहक अभिराम!
एक मनोरथ दायनि धरिणी, मन निर्मल तन पावन करिणी!!
श्री यश, कीर्ति, सम्पदा भरिणी, कामधेनु निष्काम!
भक्त शिष्य जन-गण-मन हरिणी, शतशः कोटि प्रणाम!!

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः

श्री बृजमोहन वाशिष्ठ

जब योग के बारे में विचार प्रस्तुत करना होता है तो समझ में नहीं आता कि इसके बारे में क्या बोला जाये। जिस तरह समुद्र में केवल मछली या रत्न ही नहीं होते बल्कि अनेक वस्तुएं होती हैं, उसी तरह योग में अनेक सम्प्रदायें छिपी हैं। जिसे जितनी जरूरत है, वह उससे ग्रहण कर सकता है। योग केवल आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए ही नहीं वरन् भोगी या रोगी व्यक्ति के लिए भी है।

बीमारी और परेशानी का मुख्य कारण है–मन का चंचल होना। आज प्रत्येक व्यक्ति का मन चंचल है। इसी चंचल मन का कारण वह परिस्थितियों का दास बन गया है और इसी कारण उसे अपने जीवन में अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है। तुम किसी को भी दोष मत दो, क्योंकि सब तुम्हारे चंचल मन के कारण ही होता है। यदि संसार में किसी वस्तु को पाना चाहते हो तो मन की चंचलता को दूर करो। जिस दिन तुम्हारा मन शान्त हो जायगा, उस दिन तुम अपने प्रारब्ध, अपनी परिस्थितियों, अपनी बीमारियों तथा अपने घर को बदलकर शक्तिमान् बन जाओगे। तुम देवता बन जाओगे, संत कबीर ने तो स्पष्ट रूप से कहा है–

"मैं तो उन सन्तन का दास, जिन्होंने मन मार लिया"

योग का मार्ग तो एक उपदेश है। चाहे राज योग हो, भक्तियोग हो, कुण्डलिन योग हो, लययोग हो या अन्य कोई भी योग हो, सबमें एक बात बतलाने की चेष्टा की गयी और वह यह कि चंचल मन को कैसे शान्त किया जाये। यह मन रात या दिन ही नहीं बल्कि निद्रावस्था में भी चंचल रहता है, क्लोरोफार्म एनेस्थीशिया देने पर भी मन चंचल रहता है। इस मन को कैसे शान्त किया जाय, जरा सोचो। प्रश्न उठता है यदि मन चंचल है तो क्या हानि होती है? सामान्य व्यक्ति चंचल मन के कारण होने वाली दुर्घटनाओं का अनुमान नहीं लगा सकता वह घर सम्पत्ति, प्रारब्ध या सरकार को दोष देगा, मगर अपने ऊपर दोष नहीं लेगा। वह कभी यह नहीं कहेगा कि मेरा मन चंचल था, इसलिये वह सब हो गया।

योग शास्त्र में सबसे पहली बात समझाई गयी कि मन में उत्पन्न होने वाले संकल्प-विकल्प और विक्षेपों को कैसे रोका जाये तथा उन्हें कैसे निष्प्रभावी किया जाये। अब उसे अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करो। जब कोई घटना घटती है तो उसका मन पर प्रभाव है। उस घटना के कारण मन में संस्कार जम जाते हैं और उससे सम्बन्धित संकल्प-विकल्प मन में उठते रहते हैं। दिन रात वही चीजें मन में आती हैं, चाहे विद्यार्थी हो, व्यापारी हो, अधिकारी हो या ग्रहणी। किसी एक घटना पर मन आसक्त हो जाता है, फिर उनके दिमाग में घूम-घूमकर वही विचार आते हैं। लाख प्रयत्न करने पर भी तुम अपने उन विचारों से अलग नहीं कर पाते। तुम्हारे पास उन मन को उन घटनाओं में अलग करने

के लिए कोई उपाय नहीं है। तुम लोग मन बहलाने के लिये कभी सिनेमा चले जाते हो और कभी-कभी आमोद प्रमोद से अपने को सन्तुष्ट करते हो, किन्तु अन्त में वहीं आ जाते हो, जहाँ पहले थे। यह मानसिक रोग सबको है। इस रोग से छुटकारा पाने के लिए तुम्हें योग के पास आना ही होगा।

आज बीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान शास्त्र का उद्भव हुआ, जिसमें मानसिक रोग की बात कही जाती है। किन्तु ये 19 वीं या 20 वीं शताब्दी की बात नहीं है। आज से कई हजारों वर्ष पूर्व भारत वर्ष के ऋषि-मुनियों ने इसे जान लिया था कि मन सुख-दुख में, काम-क्रोध में, ईर्ष्या-द्वेष में उलझता है। ये सब मन के संकल्प विकल्प को जन्म देते हैं। प्रत्येक घटना का प्रभाव मन पर पड़ता है। मन पर पड़ने वाले ये प्रभाव हमें नित्य निरन्तर बीमार करते रहते हैं। इन बीमारियों का हमें पता ही नहीं चलता। डाक्टर लोग ध्यान दें। जैसे-जैसे तुम्हारे मन पर जीवन की घटनाओं का प्रभाव पड़ता है, वैसे-वैसे तुम्हारे शरीर के अन्दर रासायनिक क्रिया बढ़ने लगती है, नर्वस सिस्टम की क्रियाएं बढ़ने लगती हैं। हार्मोन की प्रक्रिया बदलने लगती है, शरीर के अन्दर का तापमान बदलने लगता है और फिर उसके लिए हम दवाई तैयार करते हैं।

भारत में योग-निद्रा का उद्भव हुआ। यहाँ मन के रहस्यों को खोला जाय। रोग, विकार, दुश्चरित्र, अपराधी व्यक्तित्व, मानसिक कमियाँ, स्मृति नष्ट होने का कारण मन ही है, न कि वाइरस और बैक्टीरिया। इस बात को अच्छी तरह सुन लो। आज नहीं तो कल जब पश्चिम के लोग इस बात को कहने लगेंगे, तब हिन्दुस्तान के लोग मानेंगे।

योगशास्त्र का प्रमुख विषय मन है। कर्मयोग, राजयोग और ज्ञान-योग के विषय में वेदान्त ग्रन्थों को भी पढ़ो, लेकिन उन सब में एक ही बात कही गयी है, मन के अन्दर उत्पन्न होने वाले संकल्प-विकल्प एवं विक्षेपों को कैसे रोका जाये। इस सम्बन्ध में बहुत से उपाय बतलाये गये हैं, उदाहरण के तौर पर हम लोग कहते हैं कि ट्रांजिस्टर चल रहा है, बन्द कर दो, ये विक्षेप के कारण हैं। मगर तुम इस टेपरिकार्डर को जो तुम्हारे अन्दर चल रहा है, कैसे बन्द करोगे? तुम्हें इसे भी बन्द करना मालूम है क्या? इस टेपरिकार्डर में तो नित्य निरन्तर जीवन की घटनाएं अंकित हो रही हैं। हरेक दुख-सुख के संस्कार चलचित्र की तरह जमा हो रहे हैं। जीवन की एक भी घटना ऐसी नहीं जो इसमें अंकित न हो। इसका इलाज क्या है? मन पर विजय पाना। चाहे तुम एक छोटे विद्यार्थी हो अथवा बड़े व्यक्ति हो, इस बात को गांठ बांध लो-जब तुम अपने मन के स्वामी बनोगे तब तुम अपने जीवन के स्वामी बनोगे। इतिहास में तुम लोगों ने हजारों लोगों का नाम पढ़ा सुना होगा। आज तुम जिनकी पूजा करते हो, जिनकी गाथाओं का वर्णन करते हो, जिनकी विरुदावली गाते हो, जिनकी कहानियां सुनते हो, उन लोगों ने मन को अपने वश में कर उस पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी। इस आधार को ही लेकर योगशास्त्र का जन्म हुआ।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि अनुभव से बीज पैदा होता है तथा मन में विकार लेकर प्रकट होता है। अतः साधना की पद्धति बतलाई गयी है। जब हम साधना के लिए बैठते हैं और चित्त

को एकाग्र करने का प्रयन्त करते हैं तो हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। इसका अर्थ है जितने भी अनुभव हैं वे सब हमारे अन्दर हैं और साधना की अवस्था में प्रकट होते हैं। ऐसी स्थिति में साधना पद्धति को ठीक प्रकार से समझना चाहिए। जब हम साधना करते हैं तब मन में संकल्प-विकल्प आये तो उन्हें आने दो अपनी साधना चालू रखो। ऐसा करने से बहुत से विचार आते हैं और कभी-कभी तो सन्तुलन भी नहीं हो पाता। उच्च कोटि की साधनाओं में मन के अन्दर के संस्कार बहुत तीव्र गति से प्रकट होते हैं। बहुत से लोग इसे संभाल नहीं पाते, इसलिए साधना मार्ग से हठयोग को लिया गया है। हठयोग के बाद ही दूसरी साधना क्यों शुरू करते हैं, यह भी जानने योग्य है। मैं इसे समझाने का प्रयत्न करूंगा।

एक मनस्तत्व है और दूसरा प्राण। दोनों हमारे अन्दर हैं। मनस्तत्व का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों से है और प्राण का सम्बन्ध कर्मेन्द्रियों से है। इस प्रकार दस इंद्रियों का एक समूह है। इन इन्द्रियों का सम्बन्ध प्राण और मन से रहता है। हमारे यहाँ प्राण और मन को शिव-शक्ति के नाम से पुकारा जाता है। इन दो शक्तियों को हठयोग में इडा-पिंगला और कहीं-कहीं पर गंगा-यमुना के नाम से भी जाना जाता है। मनस्तत्व और प्राण शरीर में व्याप्त है जिसके द्वारा हम जीवित हैं और कार्य करते हैं। इन दोनों तत्वों के विषय में भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने बहुत पहले सोचा और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे, कि प्राण को नियन्त्रित करने से मन काबू में रहता है तथा मन को नियन्त्रित करने पर प्राण काबू में आता है जैसे कि योगदर्शन में आता है।

यत्र मनो लिखते तत्र प्राण लियते
यत्र प्राण लियते तत्र मनो लियते

जहाँ मन लय होता है वहीं प्राण लय हो जाता है और जहाँ प्राण लय होता है वहीं मन लय हो जाता है।

मन को नियन्त्रित करने के लिये प्राणों का नियन्त्रित करना परम आवश्यक है। इसको प्राणायाम कहते हैं अनेक शास्त्रों में इसका वर्णन है। इसके अतिरिक्त महात्माओं ने अनुभव से जिज्ञासाओं को सिखाया है। राजयोग के अनुसार श्वास लेने और छोड़ने के बीच में थोड़ा सा जो गति विच्छेद है, वह प्राणायाम है अर्थात् श्वास रोकने को प्रणायाम कहते हैं। जब श्वास को रोकते हैं तब श्वास को एक क्षेत्र में बांध करके रखना पड़ता है। इस बाँध करके रखने को बन्ध कहते हैं। ये बन्ध तीन प्रकार के होते हैं। मूलबंध, जालंधर बंध, और उड्डियान बंध, इससे मन धीरे-धीरे शान्त होने लगता है।

हठयोग में मन और प्राण एक दूसरे के साथ सामंजस्य पूर्वक काम करते हैं। मेरुदण्ड के दाहिने व बायें भाग में दो नाड़ियाँ होती हैं जिसमें प्राण नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित होता है बायीं तरफ की नाड़ी जिसे इडा कहते हैं मन का प्रतिनिधित्व करती है और दायीं तरफ की नाड़ी जिसे पिंगला कहते हैं प्राण का प्रतिनिधित्व करती है। मेरुदण्ड के अन्दर केवल दो नाड़ियाँ ही नहीं हैं अपितु योग शास्त्र के अनुसार इनसे अन्य नाड़ियाँ भी जुड़ी हुई हैं, जो बहुत ही सूक्ष्म हैं जैसे ब्रह्म नाड़ी, चित्रानाड़ी, वज्रा नाड़ी, अलख नाड़ी, ऊषा नाड़ी इत्यादि। जिस प्रकार तार से बिजली प्रवाहित होती है। इस तरह शरीर में सिर से लेकर पैर तक

एक-एक बिन्दु नाड़ी के साथ सम्बद्ध है। हठयोग के अनुसार शरीर में केवल हृदय से मिलने वाली नाड़ियों की संख्या 72000 है। उदाहरण के तौर पर जैसे माइक का संचालन तार द्वारा होता है। उसी प्रकार इस शरीर का संचालन नाड़ियों द्वारा हो रहा है। जरा सोचो, यह शरीर कितनी बड़ी मशीन है। इसके अन्दर लाखों नाड़ियाँ हैं। हमको एक चीज समझनी है वह है प्राण और चित्त के द्वारा जीवन का ज्ञान होता है। एक अंग दो प्रकार की ऊर्जा से संयुक्त है। जहाँ प्राण होता है वहीं चित्त होता है जहाँ चित्त होता है वहीं प्राण होता है।

शरीर में इडा और पिंगला नाड़ियाँ हाईटेंशन लाईन की तरह है। हम बिजली को हाईटेंशन लाईन को ट्रान्सफार्मर में लाते हैं। ट्रांसफार्मर से लाईन घर के सामने जाती है वहाँ से हमारे घर के मीटर बोर्ड में जाती है। फिर वहाँ से मेनस्विच में, फिर जंकशन में और उसके बाद सभी कमरों में। ठीक वही हाल हमारे शरीर का है। इस शरीर में अनेक जंकशन हैं जिन्हें चक्र कहते हैं ये चेतना के वितरण केन्द्र हैं जिन्हें हम मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र के नाम से जानते हैं। इन चक्रों के माध्यम से मनः शक्ति और प्राणशक्ति सम्पूर्ण शरीर में एक दूसरे क्षेत्र को ओर जाती है। इस वितरण क्रिया के कारण ही हमारे शरीर के उस भाग में शक्ति का अभाव है। जहाँ पर शक्ति का प्रवाह का रुक गया है। इसलिए वह अंग बीमार है। इस स्थिति में आसनों द्वारा ऊर्जा प्रवाह के अवरोध को दूर करते हैं। यह रोग की बात है।

अब मन के संकल्प-विकल्प दूर करने की विधि पर आओ। हमारे यहाँ इसे दूर करने के दो उपाय है पहला राजयोग दूसरा हठयोग। हठयोग कहता है तुम प्राणों को जीतो, तो मन वश में हो जायगा। राजयोग कहता है प्राणायाम करने की जरूरत नहीं तुम केवल मन के विचारों को रोको बस मन तुम्हारे वश में हो जायगा। हठयोग की साधना का अधिकारी आजकल के कलिकाल में मिलना संभव नहीं हठयोग के साधक का परिपूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। हठयोग में वीर्यहीन साधक सफल नहीं हो सकता, बल्कि उल्टे बीमार हो जाता है और फिर योग को बदनाम करने की कोशिश करता है।

दूसरी विधि राजयोग है इस विधि को प्रत्येक स्थिति का व्यक्ति कर सकता है इसमें मन को एकाग्र करने के लिये जप और ध्यान का अभ्यास किया जाता है। योग में प्रथम स्थान पर तो हठयोग ही है जो प्राणायाम से आरम्भ होता है।

प्राणायाम में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। जब हम दोनों नासिकाओं से श्वास लेते हों तो केवल ऐसा मत समझो कि फेफड़ों में आक्सीजन भर रही है। यह बात कुछ दूर तक ही ठीक है, मगर यह प्रक्रिया इतनी ही नहीं। जब हम बायीं अथवा दायीं नासिका से श्वास लेते हैं तब मस्तिष्क में इसकी प्रतिक्रिया होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि श्वास का असर केवल फेफड़ों या पाचन क्रिया पर ही नहीं बल्कि मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों पर भी पड़ता है इस सन्दर्भ में आज के वैज्ञानिकों ने कुछ वर्षों से प्रयोग भी किये हैं। एक वैज्ञानिक ने प्रयोग किया। पहले उसे मालूम नहीं था कि दिमाग के अन्दर दोनों गोलार्द्ध से एक गोलार्द्ध

कुछ काम देर से करता है तो दूसरा बन्द रहता है और दूसरा काम करता है तो पहला बन्द रहता है। प्रयोग के द्वारा उन्हें यह सब ज्ञात हुआ। इसे हमारे यहाँ स्वरयोग या स्वरज्ञान कहते हैं। एक घण्टा 20 मिनट इडा चलती है, तब पिंगला बन्द रहती है और जब पिंगला चलती है तब इडा बन्द रहती है। मगर इसका भी विशेष नियम है जब अमावस्या के बाद शुक्ल पक्ष शुरू होता है तब प्रतिपदा, द्वितीया, एक तरीके से चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी को दूसरे तरीके से, सप्तमी, अष्टमी, नवमीं को पहले तरीके से, दशमी, एकादशी, द्वादशी को दूसरे तरीके से श्वास चलती है। यह सुर्योदय से आरम्भ होती है। कृष्णपक्ष में इसकी आवृत्ति दूसरी तरह की होती है इस श्वास क्रिया का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। शास्त्र कहता है कि जब हमारा दाहिना श्वास चले तो ऐसा काम करो और बायां स्वर चले तो ऐसा काम करो और दोनों स्वर चलें तो ऐसा काम करो हठयोग के अनुसार जब दोनों स्वर एक साथ चलें तो तब उसे सुषम्ना कहते हैं। जिस समय सुषुम्ना स्वर चलेगा, उस समय हमारे संकल्प-विकल्प अपने आप दूर हो जायेंगे। अब प्रश्न उठता है कि उस सुषुम्ना को कैसे जगायें। सन्त कबीर ने कहा है कि जब इडा और पिंगला 2-4 महीने एक साथ मिल जाये तो सुषुम्ना का राग निकलता है। जब यह सुषुम्ना शुरू हो जाये तब साधना करनी चाहिये। बहुत से लोग कहते हैं कि भक्ति श्रेष्ठ है, प्राणायाम की आवश्यकता नहीं। भक्ति श्रेष्ठ है। कीर्तन और पूजा आसान है किन्तु इसके साथ मन को मिलाओ, तब पता चलेगा कितना कठिन काम है तथा मन कहां-कहां भागता है। प्राणायाम के बाद जब सुषुम्ना जाग्रत हो जाती है तो थोड़ी देर के लिये उस वक्त पदमासन लगाते ही मन अपने आप शान्त हो जाता है। प्राणायाम से मन संकल्प-विकल्प शान्त होते हैं। प्राणायाम करने से पुर्व आसनों का अच्छा अभ्यास होना चाहिये। मैंने अपने गुरुदेव जी से पूछा तो उन्होंने बतलाया कि आसनों से शरीर में होने वाले अवरोध दूर होते हैं।

आज हम और तुम इस दुनिया में रहते तो हैं। लेकिन कुछ जानते नहीं। एक छोटा-सा 4-5 वर्ष का बच्चा है, उसके दिमाग में कितना तनाव रहता है? पढ़ना है–पहला तनाव, पास होना है–दूसरा तनाव और यदि एक बार प्रथम आया तो हमेशा प्रथम आना है–तीसरा तनाव, बचपन से लेकर बुढ़ापे तक जीवन तनाव-ग्रस्त रहता है। जरा सोचो तो बाल्यावस्था में ही इतना अधिक तनाव होता है कि उसका तन-मन बिल्कुल टूट जाता है। उसके बाद पारिवारिक और लौकिक जीवन शुरू होता है। जब हमारी प्रतिक्रियाएं सामान्य नहीं रह पाती। परिणामतः पारिवारिक जीवन सुखी सामाजिक निर्भय नहीं हो पाता। बौद्धिक जीवन निर्विकार नहीं रहता, इसलिये आध्यात्मिक लक्ष्य ही स्पष्ट नहीं रह पाता। इन सबका कारण है, मन हमेशा तनाव से भरा रहता है।

योग की भाषा में इसे क्लेश कहते हैं। हमें स्थिरता का ज्ञान होना आवश्यक है। गीता के दूसरे अध्याय में जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज से अर्जुन ने स्थितप्रज्ञ पुरुष के बारे में पुछा है।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किप्रभायेत किमासीत व्रजेत किम्।।

हे भगवान जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसे

समाधि में स्थित महापुरुष का व्यवहार कैसा होता है। उसका चाल-चलन कैसा होता है? स्थितप्रज्ञ पुरुष मर्यादाओं को जीवन की सीमाओं और सुख को एक मिनट में वहन कर सकता है। आजकल एक मशीन निकली है जिसका नाम है स्टेबलाइजर। वह बिजली की गड़बड़ी को नियन्त्रित रखती है। मान लो हमारी मशीन 230 वोल्टेज से 140 वोल्टेज के बीच में चलती है तो बाजार में उसके अनुसार स्टेबलाइजर मिलेगा और जब से उसे घर की बिजली में लगाओगे तो बिजली को स्टेबलाइज कर देगा। यह स्टेबलाइजर हमारे मन में होना चाहिये ताकि थोड़ा दुख अथवा बहुत दुख हमें दुखी न कर सके। श्रीराम के जीवन में भी दुःख आया। उन्हें कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। पहले वन जाने का आदेश हुआ, उसके बाद पिता की मृत्यु हुई, सीता-हरण हुआ। यदि हमारे साथ ऐसा हो जाये तो हम क्या करेंगे? जीवन भर रोना आयेगा। परन्तु श्रीराम जो सुख-दुख के प्रति तटस्थ रहे। कहने का तात्पर्य है, स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जीवन के असीमित सुख-दुख के उतार चढ़ाव में बिल्कुल स्थिर और उद्वेग रहित रहता है।

सीमाओं को जीतने के लिये तथा अपने जीवन में सन्तुलन बनाने के लिये योग-शास्त्र है, यदि शरीर लेकर आये हैं तो सुख-दुख भोगना पड़ेगा। फर्क केवल इतना है-

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः अर्थात् चित्त वृत्तियों को रोकना योग है।

ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख काटे रोय।
देहधारी को दण्ड है, सब काहू को होय।।

हमें ज्ञानियों की तरह ज्ञान के साथ संसार में जीवित रहना चाहिए। अपनी शक्तियों को दुख के विचारों से नष्ट न होने दें। हम जहाँ भी हों वहीं से ऊपर उठकर एक श्रेष्ठ आदमी बनें। बस यही योग का प्रमुख दृष्टिकोण है पातञ्जल योग सूत्र में योग की परिभाषा क्या है?

अहंकार नहीं

वेदान्त बताता है कि शोक, हर्ष, भय, लोभ, क्रोध, मोह, स्नेह, जन्म, मृत्यु आदि धर्म अंहकार के हैं, आत्मा के नहीं। सुषुप्ति अवस्था में इन व्याधाओं की प्रतीति नहीं होती, क्योंकि अहंकार आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा निर्विकार है।

सन्तों का मिलाप

श्री विष्णु प्रसाद व्यास

**"तीरथ गये तो एक फल, सन्त मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहे कबीर, विचार।।"**

परम सन्त कबीरजी कहते हैं कि तीर्थ पर जाने से जीव को जितना लाभ प्राप्त होता है उससे चार गुणा फल उसको सन्तों के मिलाप से प्राप्त होता है अर्थात् तीर्थ पर जाने से यदि एक फल की प्राप्ति होती है तो सतपुरुषों के मिलाप से चार फल की प्राप्ति होती है। वे चार फल हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष।

प्रायः लोग तीर्थों पर इस विचार से जाते हैं कि वहां जाने से उनके पाप नष्ट हो जायेंगे और उन्हें तीर्थ स्नान का पुण्य भी प्राप्त होगा। सन्त-सत्पुरुषों का मिलाप हो जाये, और उनकी चरण-शरण में जाने से जीव के सब पाप नष्ट हो जायें। वैसे तो संसारी मनुष्य आयु भर अपने काम धन्धों से निवृत नहीं हो सकता, परन्तु पुण्य प्राप्ति की व्यवस्था में जब घर से निकल कर किसी तीर्थ-स्थान अथवा धर्म स्थान पर पहुँच जावेगा तो सम्भव है कि किसी महापुरुष की चरण-शरण के सहारे भजन अभ्यास की कमाई करके वह भवसागर पार हो जाये।

कथन है कि एक जिज्ञासु तीर्थ यात्रा के विचार से घर से निकला। मार्ग में एक सन्त महापुरुष की कुटिया पड़ती थी, वह रात को वहीं ठहर गया। जब प्रातः उठकर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चलने लगा तो उसने सन्तों के चरणों में विनय की कि भगवन आप यदि मेरे साथ तीर्थ यात्रा को चलें तो कितनी अच्छी बात है। सन्तों ने यह कहकर कि "अभी हमें समय नहीं है उसे टाल दिया।"

वह जिज्ञासु अपने मार्ग पर चल पड़ा। अभी तनिक दूर ही गया था कि उसे एक कौतुक दिखाई पड़ा।

वह क्या देखता है कि तीन गउएं जो रंग की काली थीं वहां आईं और कुटिया के समीप एक तालाब में उन्होंने स्नान किया। स्नान करने के पश्चात् वे गउएं उज्जवल एवं श्वेत रंग की होकर बाहर आईं। यह दृश्य देखकर वह बड़ा आश्चर्य चकित हुआ। उससे रहा न गया और उनसे पूछने लगा- आप कौन हैं कहां से आई हैं और इस तालाब में ऐसी क्या विशेषता है जिससे आप काली से उज्जवल हो गई हैं।

ईश्वर की कृपा, वे गउएं बोलीं—हम गंगा जमुना, सरस्वती हैं। पापी लोग जब हमारे अन्दर स्नान करते है तो उन पापों की मैल के कारण हमार रंग काला हो जाता है। तब हम इस तालाब में स्नान करके फिर से पवित्र और उज्जवल हो जाती हैं इसका कारण है कि इस तालाबा में सन्त महापुरुषों के चरण पड़ते हैं।

यह उत्तर सुनकर जिज्ञासु सोचने लगा कि यह कितनी अनोखी बात है कि मैं जिनका स्नान करने के लिए तीर्थों पर जा रहा था, वे स्वयं ही

सन्तों के पास आई हुई है। मैं अब तीर्थों पर क्यों जाऊँ? क्यों न यहां ही इन सन्त सत्पुरुषों की सेवा करके सच्चे स्नान का फल पाऊँ। यह विचार करके वह लौट पड़ा और सन्त पुरुषों की सेवा करने लगा।

अठसठ तीरथ गुरु चरण, परबी, होत अखंड।
सहजो ऐसा धाम नहिं, सकल अण्ड ब्रह्मण्ड।।

(सहजोबाई)

परम सन्त श्री कबीरजी के समय की कथा है–एक भक्त प्रयाग-यात्रा को जा रहा था। मार्ग में उसे रात पड़ गई और भाग्य से उसे कबीरजी के घर ठहरना पड़ा। प्रातः काल जब चलने लगा तो उसने श्री कबीर जी को भी तीर्थ यात्रा पर चलने की विनय की। ये तो स्वयं पूर्ण सन्त और महापुरुष थे और उनके चरण स्वयं ही प्रयागराज थे। उस प्रेमी का दिल रखने के लिए उन्होंने उत्तर दिया–"भाई ! अभी तो हमारे पास आपके साथ चलने का समय नहीं है।" उस समय एक कड़वा कद्दू उनके सामने रखा था, वही उठाकर उसे दे दिया और कहा–एक काम करना। जहां-जहां तुम स्नान करो, इसे भी स्नान करा देना और वापसी पर हमें पहुँचा देना।

वह प्रेमी उस कद्दू को लेकर चल पड़ा। वह जिस-जिस तीर्थ पर जाता, स्वयं भी स्नान करता और कद्दू को भी स्नान कराता, कुछ समय पश्चात् वह प्रेमी लौटते समय श्री कबीर साहब के घर आया और वह कद्दू उनके आगे रख दिया।

उसे शिक्षा देने के लिए कबीर साहिब ने उस कद्दू की सब्जी बनवाकर उसके आगे परोस दी, ज्यों ही उस प्रेमी ने ग्रास मुख में डाला, तो थू-थू करते हुए बोला–महाराज! यह सब्जी तो बहुत कड़वी है, किस वस्तु की बनाई है?

आपने उत्तर दिया–यह उसी कद्दू की है, ज्ञात होता है तुमने इसे स्नान नहीं कराया नहीं तो कड़ुवाहट दूर हो जाती।

यह सुनकर प्रेमी हँसते हुए बोला, वाह महाराज! भला बाहर के स्नान से भी अन्दर की कड़ुवाहट कभी दूर हुई है?

श्री कबीर साहब बोले–बस! हमारा भी यही तात्पर्य है कि केवल तीर्थों के स्नान से अन्दर की मैल दूर नहीं होती। जब तक किसी सन्त-पुरुष का सत्संग न किया जायेगा, अन्दर की मैल दूर न होगी।

यदि मन के भीतर मैल है, तो जीव कितना ही तीर्थ स्नान करता रहे, न तो इससे मन की मैल दूर होगी और न ही वह बैकुण्ठ जा सकता है। ऊपर के पुण्य कर्म करने से लोग भले ही प्रसन्न हो जायें और प्रशंसा भी करने लगें, परन्तु इससे मालिक तो प्रसन्न नहीं हो सकता, क्योंकि वह परमात्मा ना समझ नहीं है वह तो घट-घट की जानता है। वास्तव में सच्चा स्नान तो सन्त सदगुरु की निष्काम सेवा है क्योंकि इससे मन की मैल धुलती है।

यदि स्नान करने से जीव की गति (मुक्ति) हो जाती है तो फिर मेंढक आदि जल जन्तु हर समय जल में ही निवास करते हैं सब मुक्त हो जाते। जबकि मन के भीतर तो बुरे विचारों की मैल हो और बाहर से बार-बार स्नान करता रहे तो उस जीव की भी मेंढक की तरह ही दशा होगी अर्थात् वह कभी भी आवागमन के चक्र से छूट नहीं सकता, जब तक कि मन में पवित्र विचार न भर लें।

श्री कबीर साहब के समय यह आम कहावत थी कि जो काशी में शरीर त्यागता है वह सीधा बैकुण्ठ को जाता है और जो श्री गंगाजी के पार की धरती हाडम्बा या मघा धरती में देह त्यागता है वह नरक गामी होता है। इस भ्रम को दूर करने के लिए भी श्री कबीर साहिब ने साफ-साफ अपनी वाणी में कहा कि यदि जीव मन का कठोर है अर्थात् उसके मन में मालिक का भय और भक्ति नहीं है, वह चाहे काशी में देह त्यागे वह नरक से बच नहीं सकता। इसके विपरीत मालिक का प्यारा सन्त जो सदा भजन भक्ति में लीन रहता है, यदि हाडम्बा की धरती पर देह त्यागता है तो वह स्वयं तो भवसागर से पार जाता ही है, अपने साथ औरों को भी भवसागर पार ले जाता है।

परमेश्वर के धाम में न दिन है न रात— वहां तो सदैव प्रकाश ही प्रकाश है। वहां पर वेद और शास्त्रों की पहुंच नहीं है अतः ऐ बावरे जीव! तू यदि उसे पाना चाहता है तो अपनी सुरति को सब ओर से हटाकर केवल उस मालिक का भजन कर। मालिक के भजन से तेरे जन्म-जन्मान्तरों के पाप धुल जावेंगे।

ऊपर दिये गये प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वास्तव में सच्चा तीर्थ सन्तों सतपुरुषों का सत्संग है और सच्चा स्नान पूर्ण गुरु की निष्काम सेवा है। जहां सन्त निवास करते हैं वही वास्तव में तीर्थ स्थान है। तीर्थ स्थान की प्रथा के पीछे यह भेद है कि जीव कुछ दिनों के लिए घर के काम-काज से अवकाश लेकर तीर्थों पर जायेगा तो सम्भवतः उसे वहां किसी सन्त-सतपुरुष का सत्संग प्राप्त हो जाये और उसका उद्धार हो जाये।

यदि कोई कुंआ खोदना चाहता है और एक ही स्थान पर पूरे विश्वास से खुदाई करता है तो एक दिन अवश्य ही सफल होगा। इसके विपरीत यदि वह थोड़ा-थोड़ा कई स्थानों पर खोदता रहे तो सिवाय समय नष्ट करने के कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। एक ही स्थान पर अटल विश्वास से खुदाई करने वाला एक दिन में सम्पूर्ण पाताल के जल को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो जिज्ञासु अपने इष्टदेव सद्गुरुदेव जी की अनन्य भक्ति और निष्काम सेवा में तल्लीन रहता है, वह एक दिन अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

जो भाग्यशाली जीव पूर्ण सद्गुरु की शरण में आ पहुंचे हैं और सत्संग रूपी तीर्थराज भी उनको प्राप्त हो गया है। उनके भाग्यों की जितनी भी सराहना की जावे थोड़ी है। उन्हें चाहिए कि वे अपने दुर्लभ समय का मूल्य पहचानें, क्योंकि मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता।

संसार भव बन्धन नहीं है और न ही मायाजाल है। वह सृष्टा की अनुपम कलाकृति है जिसमें सत्-चित्त और आनन्द भरा पड़ा है।

श्री रामनवमी महोत्सव 1997

श्री जगदीश गर्ग
सचिव श्री सिद्धगुफा सेवा समिति (रजि०)

इस बार श्री रामनवमी महोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ श्री सिद्धगुफा सवाई धाम पर महामेला के रूप में दि. 14, 15 व 16 अप्रैल को बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर आठ-दस हजार श्रद्धालु भक्तजन गुरुभाई-बहनों ने उत्सव की शोभा बढ़ाई तथा इस पावन पर्व पर श्री प्रभुजी के जन्म दिवस के उपलक्ष में फूल मालाएँ एवं प्रसाद भेंट चढ़ाकर योग-योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज एवं सद् गुरुदेव योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पूजन किया। श्री सिद्धगुफा सेवा समिति जिसका पंजीकरण 31 जनवरी 1997 को हुआ है। जिसमें अभी तक 65 गुरुभाई बहनों ने आजीवन सदस्यता के 1100) रु. के हिसाब से जमा किए हैं तथा 237 भाई बहनों ने साधारण सदस्यता के 151) रु० के हिसाब से जमा किए हैं, ने अपना मुख्य लक्ष्य पूरा करने हेतु प्रतिपदा के दिन दि. 8.4.1997 को श्री सिद्धगुफा में अखण्ड ज्योति की स्थापना की। यह ज्योति श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के ग्राम अलूपुर से दि. 6 अप्रैल को मन्त्रों सहित वहाँ की संस्था के उपाध्यक्ष श्री ताराचन्द्र जी गर्ग (गऊशाला मंडी, पानीपत) द्वारा योग मन्दिर से प्रज्वलित की गई, कुरुक्षेत्र मण्डल एवं वहाँ की मुख्य आचार्य बहन वेदवती जी ने तथा अमृतसर की मुख्य आचार्या ने इस शुभ अवसर पर अलूपुर के सत्संग भवन में भजन कीर्तनों द्वारा ज्योति की उपासना की। इस ज्योति को जींद मण्डल के प्रधान श्री वीरभान बांगड़ तथा कुँवर भवरसिंह एवं मास्टर कुलवन्त सिंह जी ने अपनी गाड़ी में विराजमान किया। जींद के ही श्री रघुवीर ने इस अवसर पर वीडीओ रील बनाने का प्रबन्ध किया। इस प्रकार अखण्ड ज्योति अलूपुर से सैकड़ों भाई-बहनों के साथ दिल्ली के लिए रवाना हुई, रास्ते में जी.टी. रोड पर गन्नौर पर श्री प्रभुजी के अनन्य भक्त श्री ओमप्रकाश बंसल ने अपने क्रेशर पर अखण्ड ज्योति का स्वागत किया और सभी भाई-बहनों को जलपान कराया। तत्पश्चात् सायंकाल यह शोभायात्रा दिल्ली के आर. के. पुरम में स्थित योग मन्दिर में पहुँची जहाँ पर ब्र. बेदराम जी ने कितने ही गुरुभाई-'बहनों ने अखण्ड ज्योति का स्वागत किया और मन्दिर में विराजमान कर रात्रि विश्राम का प्रबन्ध किया। सभी आगन्तुक भाई-बहनों का दिल्ली वालों की ओर से पूर्ण सम्मान किया गया एवं प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था उपलब्ध रही। दि. 7 अप्रैल को यह शोभायात्रा दिल्ली से आगरा पहुँची जहाँ पर आगरा सत्संग मण्डल की बहन विमला गोस्वामी, प्रेम गोस्वामी एवं झाँसी से आयी आशा बहन के संकीर्तन मण्डल द्वारा ज्योति का स्वागत किया गया। दि. 8 अप्रैल को प्रातः बरहन रोड के मोड़ पर समिति के अध्यक्ष श्री श्यामसुन्दर जिन्दल, कोषाध्यक्ष श्री भुवनेन्द्र झा, विशिष्ट सदस्य श्री के. पी. सिंह, सवाई कीर्तन मण्डल के मुख्य श्री रघुनाथ सिंह, शिकोहाबाद मण्डल एवं दूर-निकट से आए कितने ही गुरुभाई-बहनों ने ज्योति का स्वागत किया, बहोरी सिंह ने भी स्वागत किया एवं सेवा में भाग लिया। जहाँ पर बैंडबाजा तथा सजी हुई झाँकी का प्रबन्ध था जिसमें अखण्ड ज्योति को विराजमान किया गया। यह शोभायात्रा श्री प्रभुजी का कीर्तन, अखण्ड ज्योति प्रभुरामलाल जय-जय, की धुनि गाते हुए श्री आश्रम के द्वार पर पहुँची जहाँ पर आश्रम के सभी ब्रह्मचारियों ने हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया और आरती-पूजन के पश्चात् यह ज्योति योगिनी बहन डॉ. उमा शर्मा द्वारा श्री सिद्धगुफा के अन्दर स्थापित की गई और इस शुभ अवसर पर प्रसाद वितरण किया गया।

योग महामेला के शुभ अवसर पर दि. 14 अप्रैल से दि. 16 अप्रैल तक योग सिद्धान्तों पर प्रवचन हुए जिसमें मुख्य भूमिका आचार्य चन्द्रहास शर्मा, श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री, ब्र. दासलाल शर्मा, ब्र. ओमप्रकाश पालीवाल, ब्र. बृजमोहन तथा श्री सोमदत्त शर्मा ने निभाई संकीर्तन मंडलों में सालवन के बाबा ज्ञानीराम, सवाई संकीर्तन मंडल के रघुनाथ सिंह एवं नेत्रपाल सिंह, झाँसी संकीर्तन मंडल के श्री कृष्णकान्त झा एवं आशारानी दुबे तथा भिंड, शिकोहाबाद, कुरुक्षेत्र, गंगापुर सिटी आदि संकीर्तन मंडलों ने रात भर लोगों को मुग्ध रखा, तीनों दिन प्रातःकाल के समय आसन, ध्यान के साथ-साथ गुरु गीता का पाठ कराया गया। दि. 16 अप्रैल को पूजन के पश्चात् ब्रह्मभोग के साथ भंडारे का आरम्भ हुआ। पंडितों को दक्षिणा दी गई तथा वेदपाठियों एवं ब्रहमचारियों को वस्त्र वितरण हुआ। 19 अप्रैल को न्यायालय द्वारा नियुक्त अधिवक्ताओं की कमेटी द्वारा भेंट पात्र खोले गए और पैंतालीस हजार रुपये की राशि प्राप्त हुई जो अधिवक्ताओं के संयुक्त खाते में जमा करा दी गई।

अधिवक्ताओं की कमेटी ने आर्थिक व्यवस्था का दायित्व सेवा समिति को सौंपा उत्सव के उपलक्ष में सेवा समिति के पास 1.72 लाख रुपये की राशि प्राप्त हुई तथा 1.84 लाख रुपये का खर्च हुआ। सेवा समिति का मास अप्रैल का पुरा आय-व्यय का विवरण टाइटिल पृष्ठ 3 पर देखें।

श्री सिद्धगुफा सेवा समिति, सवांई (आगरा)

लेखा माह अप्रैल सन् १९९७ ई०

आय

	रु०	कुल रु०
दि० 1-4-97 पिछला बकाया		
बैंक में	52,966	
नकद	21,148	
(इसमें 51,700 रु० की राशि आजीवन सदस्यता की है)		74,114
दि० 10 से 30 तक		
(1) रामनवमी उत्सव (61 हजार रु० एक परिवार द्वारा गुप्त दान सहित)	1,72,459	
(2) आजीवन सदस्यता	20,750	
(3) सामान्य सदस्यता	7,397	
(4) अखण्ड ज्योति	10,218	
(5) योगिनी बहन उर्मा शर्मा द्वारा (जो भेंट उन्हें प्राप्त हुई)	15,321	
(6) अध्यक्ष श्री श्याम सुन्दर जिन्दन द्वारा	5,100	
		2,31,236
	कुल योग	3,05,350

व्यय

	रु०	कुल रु०
(I) रामनवमी उत्सव हेतु		
1. भण्डारा 16 ता० का	90,684	
2. खर्च रसोई	40,036	
3. लाइट व बैण्ड	18,966	
4. हैण्डपम्प	10,121	
5. मरम्मत व रंग रोगन	11,865	
6. बिजली व पंखों की मरम्मत	9,384	
7. फुटकर	2,897	
		1,83,953
(II) अन्य खर्च		
1. अखण्ड ज्योति (शोभा यात्रा)	8,600	
2. कार्यालय खर्च	2,028	
3. टेलीफोन लगाने हेतु	2,000	
		12,628
	योग	1,96,581
(III) बकाया		
1. फिक्स डिपाजिट	83,350	
2. सेविंग बैंक खाता	21,261	
3. नकद	4,158	
		1,08,769
	कुल योग	3,05,350

श्री श्याम सुन्दर जिन्दन	श्री जगदीश गर्ग	श्री भुवनेन्द्र झा
(अध्यक्ष)	(सचिव)	(कोषाध्यक्ष)

नोट—सन् 1996 का महोत्सव भण्डारा दतिया के भू० पू० विधायक श्री राजेन्द्र भारती ने किया तथा सन् 1996 की गुरुपूर्णिमा का भण्डारा ग्वालियर मण्डल ने किया, भेंटपात्र ब्रह्मचारियों को दिया गया, जबकि इसी वर्ष यज्ञ एवं पूर्ण आहुति पर एक लाख दस हजार रुपये का खर्च श्री सिद्धगुफा उत्सव मण्डल ने किया।

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008 MAY 1997

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER
Book Post

श्री ____________________

अतीव सूक्ष्मं परमात्म तत्वम्

अतीव सूक्ष्मं परमात्म तत्वम् न स्थूल दृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति ।
समाधिनात्यन्त सुसूक्ष्म वृत्या ज्ञातव्यमार्यैरतिशुद्ध बुद्धिभि ॥

परमात्म तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है, उसे स्थूल दृष्टि से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए अति शुद्ध बुद्धि वाले सत्पुरुषों को उसे समाधि द्वारा अति सूक्ष्म वृत्ति से जानना चाहिए ।

प्रकाशक एवं मुद्रक—बिनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई बार्ला, ताजगंज, आगरा के लिये राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सबाई आगरा से प्रकाशित ।
फोन : 330426